भारत-दुर्दशा

पृष्ठ ३-१—रोवत सब मिलिकै, आवहु भारत भाई—

शब्दार्थ—विधाता = परमात्मा । भीनो = भरा हुआ, परिपूर्ण । परत लखाई = देख पड़ता है । दुर्दशा = बुरी हालत ।

भावार्थ—कवि देश की दुर्दशा पर शोक करते हुए कहते हैं भारतीय भाइयो! आओ अब सब मिलकर रोवें क्योंकि अब तो भारतवर्ष की दुर्दशा को नहीं देखा जाता । जिस भारतवर्ष को ईश्वर ने सब देशों में पहले धन तथा शूरता प्रदान की तथा सब से पूर्व परमात्मा ने जिसे सभ्य बनाया, जो सबसे पहले रूप, रंग, तथा रस से भरा हुआ था तथा जिसके निवासियों ने सब से पूर्व विद्या का फल पाया किन्तु अब वही देश सब देशों में पिछड़ा हुआ दीख पड़ता है ।

२—जहँ भए शाक्य हरिचन्द रु नहुष ययाती . . . .

शब्दार्थ—शाक्य = भगवान बुद्ध । नहुष = एक प्रसिद्ध राजा, जो इन्द्र पद को प्राप्त कर चुका था और अगस्त्य ऋषि के शाप से अजगर बना था । रु = और । नहुष—ययाती = राजा नहुष का पुत्र, यह चन्द्रवंश का ५वाँ राजा, इस के यदु और पुरु नाम के पुत्रों से यादव और पौरव वंश की उत्पत्ति हुई थी । ययाती = [illegible] का राजा, इन की [illegible] की लड़की थी, जिन का विवाह [illegible] के साथ हुआ था । [illegible] हुई [illegible] हुई ।

भावार्थ—जिस भारत में शाक्यमुनि बुद्ध, राजा हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, रामचन्द्र, युधिष्ठिर, भगवान कृष्ण, सर्याती, भीम,

कर्ण तथा अर्जुन की शोभा दिखाई देती थी अब वहीं पर मूर्खता, झगडे, तथा अज्ञान फैला हुआ है. और जहाँ भी देखो चारो ओर दुःख ही दुःख दिखाई पडता है।

२—लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी ....

शब्दार्थ—लरि = लड कर। जवनसैन = यवनो (मुसलमानो) की सेना। पुनि = फिर। तिन = उन्होने। पंगु = लगडे। बिलखाई = विलाप करते है अर्थात् दुःखी होते हैं।

भावार्थ—इस देश के वैदिकधर्मावलम्बियो तथा जैनियो आदि ने आपस मे लड कर के धर्म की सभी पुस्तके नष्ट कर दी तथा परस्पर झगडा कर के (विदेशी) मुसलमानो की भारी सेना को (यहा राज्य करने का) बुलावा दिया, जिन्हो ने (यहाँ के निवासियो की) बुद्धि, बल तथा विद्या को नष्ट कर दिया. (जिस का परिणाम यह हुआ कि) अब यहाँ के लोगो मे बुरे विचार, कलह और आलस्य का अन्धकार छाया हुआ है और सब अन्धे और लगडे (अर्थात् निकम्मे) होकर दुःखी हो रहे हैं। इस प्रकार भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

पृष्ठ-४ — अंगरेज़ राज सुख साज सजे सब भारी —

शब्दार्थ—ख्वारी = खराबी। मँहगी = मँहगापन। काल = अकाल, दुर्भिक्ष। कालरोग = मृत्युसंख्या का अधिक होना। टिक्कस = टैक्स।

भावार्थ—(यद्यपि अब) अंगरेजी राज्य सदो सो सुख कर (प्रतीत होता) है, परन्तु इस मे यह बडी खराबी है कि धन

विदेश को जाता है और उस पर भी मँहगापन तथा अकाल का रोग फैला हुआ है (अथवा मृत्यु संख्या रोग की तरह फैली हुई है) परमात्मा दिन प्रतिदिन दुगना दुःख दे रहा है, सबो के ऊपर लगान देने को आपत्ति आ पड़ी है, इस लिये भाइयो! अब तो भारत की यह दुरवस्था नहीं देखी जाती।

गोरे तन कुमकुम सुरग प्रथम न्हवाई बाल —

शब्दार्थ—कुमकुम = केसर। सुरंग = अच्छा रंग। कंचन = सोना। इन्द्रनीलमणि = नीलम। पैजनी = पाओं का गहना, कड़ा। अलि = भौंरा। हरित = हरे रङ्ग की। सारस = सदृश, समान। कदली = केले का पौदा। किंकिनी = जेहर। वन्दनमाल = गले से पैरों तक लटकने वाली माला, वन्दनी माला। कारी = काली चुरी = चूड़ी। भट = योद्धा, सिपाही।

भावार्थ—[विचक्षणा] बाला ने पहले नहाया है और उसके गोरे शरीर पर केसर का सुन्दर रङ्ग [राजा] (इस तरह शोभा देता है) जैसे मानो तपाया हुआ सोना पीला और लाल सा हो रहा हो। [विचक्षणा] (जब) इन्द्रनील रत्न के समान कड़ा उसको पहना दिया [राजा] (वह इस प्रकार शोभा देने लगा) है कि मानो कमल की दो कलियों पर भौंरा बैठा हुआ हो। [विच०] सजी हुई हरी हरी साड़ी बाला की दो टांगो को इस प्रकार ढके हुए है [राजा] मानो कि केले के वृक्ष का पत्ता अपने खंभों के साथ लिपटा हुआ हो। [विच०] (जब) रत्नजटित जेहर उसके पतले कमर में बांधी गई [राजा] मानो कि शृङ्गार मण्डप में बांधी हुई वन्दनमाल शोभा दे रही हो। [विच०] बाला के गोरे गोरे

हाथो मे काली चूडी चुनकर पहनाई गई [राजा] चन्दन की शाखा के साथ लिपटी हुई नागिन सी दिखाई देने लगी।

पृष्ठ ५—बड़े बडे मुक्तान सो—

शब्दार्थ—मुक्तान=मोती। ससि=चन्द्रमा।

भावार्थ —(वि०) बडे २ मोतियो से गला वहुत शोभा पा रहा है मानो अपने पति (चन्द्रमा) के लिये तारे इकट्ठे हुए हो।

करनफूल जुग करन मे...... ......

भावार्थ—(विच०) दोनो हाथो मे करने का फूल अत्यन्त शोभा दे रहा है (राजा) मानो चन्द्रमा दो कुमुदनियाँ लेकर आकाश से उतर कर वैठा हो।

बाला के जुग कान मे—

भावार्थ—बाला=कानका भूषण (वाली)। स्रवत=टपकाता है। मकर=मगर। करि=हाथी।

[विच०] बाला के दो कानो मे बाली ऐसे शोभा देती है [राजा] मानो चन्द्रमा दोनो तरफ अमृत टपकाता हो और उस को हाथी (से मुकाबला करने) के लिये मगर पीता हो (यहा पर बाला के दो कपोल चन्द्रमा हैं, कर्णाभूषण के ऊपर मकर की आकृति मगरमच्छ है)

जिय रञ्जन खञ्जन दृगनि—

शब्दार्थ—रञ्जन=प्रसन्न करने वाली। खंजन=एक पक्षी। दृगनि=आंखो मे। मदन=कामदेव।

भावार्थ—[विच०] मन को प्रसन्न करने वाले खञ्जन के समान बाला ने अपने दोनो नेत्रो मे अञ्जन लगा दिया है [राजा]

मानो कामदेव ने अपने दो वाणो को लेकर उनपर सान फेर दी हो।

चोटी गुथि पाटी सरस—

शब्दार्थ—पाटी=माग के दोनों ओर तेल या अन्य चिकने पदार्थ से वैठे हुए वाल, पटिया। सरस=चिकने।

भवार्थ—[विच०] वाला ने चोटी गूँथ कर पटिया को चिकना वना कर के वालो को वाँध लिया [राजा] मानो कि शृगार (रस) एकत्रित होकर वालो के वेश मे वँधा हुआ हो।

बहुरि उढ़ाई ओढनी—

शब्दार्थ—सुवास=खुशबूदार।

भावार्थ—[विच०] वाला के ऊपर इत्र तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों से सुगन्धित कर के ओढनी (इस प्रकार) ओढा दी गई [राजा] मानो सूर्य और चन्द्रमा की किरणें फूली हुई लता से लिपट गई हो।

एहि विधि सो भूषित करी—

शब्दार्थ—वसन=वस्त्र।

भवार्थ—इस प्रकार गहने और कपडे वनाकर उसने (अपने को) वहुत सुशोभित किया मानो कामदेव ने वसन्तऋतु पाकर भालेरो वाली वाग ले ली हो।

जग में पतिव्रत सम नहिं आन—

शब्दार्थ—आन=अन्य, दूसरा। नारि हेतु=स्त्री के लिये। देवता=पति को ही देवता मानने वाली। याही तें=इसी से। =स्त्रियाँ।

भावार्थः—संसार मे पतिव्रत के समान अन्य कुछ भी नहीं स्त्री के लिये तो इस (पतिव्रत) के समान संसार मे दूसरा कोई (धर्म) नहीं । अनसूया, सीता, सावित्री आदि के चरित्र (जीवन) इस बात के स्पष्ट प्रमाण (सबूत) है । पतिव्रता स्त्री संसार मे धन्य है (ऐसा) वेद और पुरान गाते है । वह कुल तथा वह देश धन्य है जहां पर सती (पतिव्रता) सुजान (विदुषी) स्त्री रहती है । ये (पतिव्रता स्त्रियां) जिस समय जन्म लेती हैं वह समय भी धन्य है और जहा पर इनका विवाह होता है वह स्थान भी धन्य है । पतिव्रता स्त्री सब प्रकार से समर्थ (शक्ति शालिनी) होती है इन के समान संसार मे और कोई (शक्ति शाली) नहीं होता । इसी कारण स्वर्ग मे भी सब इनके गुणो का गान करते हैं ।

पृष्ठ ६—भई सखी ! ये अंखियां बिगरैल —

शब्दार्थ—बिगरैल—बिगडने वाली । छैल—सुन्दर और बना ठना पुरुष । पग—पद । गैल गली । रखैल—रखने वाली । चवाव - निन्दा की चर्चा । हरखत—प्रसन्न होती हैं । शक शंका, डर ।

भावार्थ—कृष्ण की सांवरी सूरत पर अनुरक्त हुई ग्वालिन कहती है कि हे सखी ! यह मेरी आखें बिगड गई क्योंकि ये उसी श्यामवर्ण सुन्दर युवक (कृष्ण) को देखे बिना नहीं रहतीं । ये आखें पतवार (नाव के किनारे) के समान हो गई हैं, पैर रखते ही डगमगाती हैं, ये आखे गुरुजनो से लज्जा करने के ढंग को छोडकर हरि को ही (अपने पास) रखती हैं (अर्थात् इन नेत्रो मे हरि का रूप समाया हुआ है। । ये नेत्र अपनी निन्दा को सु

कर और भी अधिक प्रसन्न होते हैं और मन मे किसी प्रकार की मलिनता को नहीं आने देते। कवि हरिश्चन्द्र कहते है कि ये आँखें सब डर को छोडकर अब रूप की सैर करती है।

भरोसो रीझन ही लखि भारी—

शब्दार्थ—अहीरकुल=ग्वालों का वंश। कौस्तुभ=एक रत्न, जो भगवान् विष्णु के गले मे रहता है। कोट=किरीट नामका शिर का भूषण। पखौआ=पंख। फेंट=कटि। टेंटिन=करील नामक फल, कचडा।

भावार्थ—कवि कहता है कि भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता के पात्रों को देख कर हमें विश्वास होता है कि भगवान् पतितों का उद्धार करने वाले हैं। यदि उन का ऐसा स्वभाव न होता तो वे ग्वालो के कुल को क्यों पसन्द करते और कौस्तुभ जैसे रत्न को छोड़ कर अपने गले मे गुंजाहार (रत्तियों की माला) को क्योंकर धारण करते। किरीट भूषण से शोभित मुकुट को छोड़ कर मोरो के पंख को किस लिये धारण करते। कमर कस करके करील जैसे तुच्छ फल पर मधुर फलो के स्वाद को क्यों भूल जाते। (भगवान् के) इस प्रकार उलटे अर्थात् विचित्र रीति से सन्तुष्ट होने (उदाहरणों) को देख कर मेरे हृदय मे आशा पैदा होती है कि संसार प्रसिद्ध पापी हरिश्चन्द्र को वह भगवान् दास बना कर (अवश्य) अपनाएँगे।

जहा विश्वसर सोमनाथ माधव के मन्दिर—

शब्दार्थ—माधव=बिन्दुमाधव का मन्दिर, जिस को औरङ्गज़ेब ने मस्जिद बनाया था और जो काशी मे अब भी

मस्जिद की शक्ल मे विद्यमान है। महजिद–मस्जिद।

भावार्थ.—जहाँ विश्वेश्वर, सोमनाथ * तथा भगवान् कृष्ण के मन्दिर थे वहां (उनके स्थान पर) अब मस्जिदे बन गई है और अल्ला-हू-अकबर का नारा लगता है।

पृष्ठ ७—जहँ झूसी उज्जैन—

शब्दार्थ—झूसी=स्थानका नाम सिवा=सियार। ठट्ठर=स्थान। बेबसी लाचारी, पराधीनता। चेतो सावधान हो जाओ। थिर=स्थिर, मजबूत। गिर=पर्वत। तौन=वह। वत्सगन=प्रियगण। मग रास्ता।

भावार्थ—जहाँ पर झाँसी, उज्जैन अवध और कन्नौज आदि अच्छे २ स्थान थे वहां अब शिवा (गीदड) रोते हैं और चारो ओर खण्डहर ही खण्डहर दिखाई देते हैं।

जहां धन और विद्या (ज्ञान) बरसती थी वहां पर अब हमेशा और सब प्रकार से बेबसी (दु ख, लाचारी) बरस रही है अतः हे वीरो अब तो सम्भलो।

विक्रम, भोज, राम, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर चन्द्रगुप्त, तथा चाणक्य आदि अपनी स्थिरता नाश करके कहां नष्ट होगए?

सारे क्षत्रिय नष्ट होकर कहां गिर गए हैं। उन के राज्य का वह साज (शोभा, प्रभाव) कहां गया है जिस को कि लोग चिरकाल तक जानते थे।

---

* सोमनाथ का मन्दिर गुजरात काठियावाड में है जिस पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया था और खूब लूट खसूट की थी।

दुर्ग (किले) सेना और धन वा बल कहाँ (नष्ट हो) गया (अब तो) संसार मे (उनकी) धूल ही धूल दिखाई देती है। हे मेरे प्यारे बच्चो, क्या अभी भी उठकर (जाग कर, होश मे आकर) अपने (प्यारे) आर्य मार्ग (श्रेष्ठ रास्ते) को भी नहीं बचा रहे हो।

गंगा-वर्णन।

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति--

शब्दार्थ—छहरति=छिटकती है। पोहति=पिरोती है। लोल=चञ्चल। लहि=पाकर। मनोरथ=कामना, इच्छा।

भावार्थ -गंगा जी के जल की धारा नये तथा चमकीले हीरो के हार की तरह शोभा देती है। बीच बीच मे जो जल की बूँदे (इधर उधर) उछल रही हैं वे हार के बीच मे गूँथे हुए मोती और रत्न (जैसे प्रतीत होते) हैं। वायु के लगने से चञ्चल तरंगें एक पर एक कर के इस तरह उठती हैं जैसे मनुष्यो के मन मे अनेक प्रकार की इच्छाएँ पैदा होती हैं और फिर मिट जाती हैं।

सुभग स्वर्ग सोपान सरिस........

शब्दार्थ—सुभग=सुन्दर। सोपान=सीढ़ी। भावन=अच्छी लगती है। मज्जन=स्नान करना। त्रिविधभय=तीन प्रकार का भय। (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) पदनख=पैर का नाखून। चन्द्रकान्त मन=चन्द्रकान्त नामक रत्न, जो चन्द्रमा की किरणों से पिघलता है। द्रवित=पिघला

हुआ। कमण्डल = लोटा। मण्डन —शोभा बढ़ाने वाला। सुर-सरबस = देवताओं का सर्वस्व।

भावार्थ—(गंगा जी के जल की धारा) स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी के समान है और सब के मन को अच्छी लगती है। देखने नहाने तथा पीने से (गंगा जी का जल) तीन प्रकार के भय को दूर करता है। भगवान विष्णु के पैर का नाखून जो कि चन्द्र-कान्त मणि के समान है—उस से यह जल पिघल कर निकला है और अमृत के समान है। यह जल ब्रह्मा के कमण्डलु की शोभा बढ़ाने वाला है तथा संसार के बन्धनों को काटने वाला और देवताओं का सर्वस्व (प्यारा) है।

शिवसिर मालति-माल—

शब्दार्थ—मालतिमाल=जाई के फूल की माला। भगीरथ= इक्ष्वाकु वंश का राजा। ऐरावतगज = इन्द्र का हाथी। हिमनग = हिमालय। चल=सुन्दर। सगर सुवन=सगर के पुत्र। सचारन — सवार करने वाली।

भावार्थ—(यह गंगा) शंकर के सिर की मालती-माला है, तथा राजा भगीरथ के पुण्यों का फल है। यह ऐरावत नामक हाथी और गिरिराज हिमाचल के गले का सुन्दर हार है।

पृष्ठ ८—सगर-सुवन सठ सहस……

भावार्थ—यह (गंगा) सगर के साठ हजार पुत्रों का जल के स्पर्शमात्र से ही उद्धार करने वाली है और अनन्त धाराओं का

रूप धारण कर के सागर मे विहार करने वाली है। (समुद्र
गिरती है※)

कासी कहँ प्रिय जानि ' ' ' ....

शब्दार्थ—ललकि=प्रसन्न होकर। अंकम=गोद मे। छतरी
वडे वडे छाते, जो कि ;गंगा के घाटो पर होते हैं और जिन
नीचे पुजारी इत्यादि रहते हैं। मढ़ी=झोपडी। जोहत=देखने

भावार्थ—काशी को प्यारा समझ. प्रसन्न होकर संसार
दौड करके (उससे) मिल गई। (अभी तक भी) स्वप्न मे
वह उसे नहीं छोड रही और उसकी गोद मे लिपटी हुई है।

कहीं पर बँधे हुए नए २ घाट वडे पहाड के समान शोभा
रहे हैं कहीं पर छतरियाँ हैं और कहीं पर बढ़ी हुई झोपडि
देखने मात्र से ही मन को मोह रही हैं।

धवल धाम चहुँ ओर '' '' '' ।

शब्दार्थ—धवल=सफेद। धाम=मकान। फरहरत=फह
रहे हैं। धुजा=छोटी २ झण्डियाँ। पताका=वडे वड़े झण्डे
घहरत=गम्भीर शब्द करती हैं। धुनि=शब्द। धमकत=जो

※उपर्युक्त पद्यों में कवि ने पौराणिक गाथा का वर्णन किया
जो कि इस प्रकार है—पहले भगवान नारायण के नाखून से ए
जल की धारा निकली, उस को ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु
रख दिया इसी जल का नाम ' गंगा ' पडा, जिस को शंकर
अपनी जटाओं मे धारण किया था। जब कपिल के शाप से सग
राजा के ६० हजार पुत्र भस्म होगये तो फिर भगीरथ की घो
तपस्या मे प्रसन्न होकर गंगा पृथ्वी तल पर उतरी।

से शब्द करते हैं। धौसा = बड़ा नगाड़ा। साका = प्रसिद्धि। मधुरी - एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता है। नौबत - एक प्रकार का बाजा जो कि मन्दिर तथा महलो मे पहर पहर पर बजता है।

भावार्थ.--(कहीं) सफेद २ महलो पर चारो ओर झण्डे और झण्डियाँ फहरा रही हैं कहीं पर घण्टों की आवाज हो रही है (कहीं पर) धौसे (नगाड़ो) का शब्द हो रहा है।

कहीं मधुर २ नौबत (विशेष बाजे) बज रहे है और कहीं पर स्त्री-पुरुष बैठे २ गा रहे हैं। कहीं ब्राह्मण वेद का पाठ कर रहे हैं और कहीं योगी लोग ध्यान लगा रहे हैं।

५ हुँ सुन्दरी नहात ..

शब्दार्थ—नहात = नहाते हैं। नीर = जल। कर - हाथ। उछारत = ऊपर की ओर फैंक रही है। अम्बुज = कमल। मुक्त-गुच्छ = मोतियो का गुच्छा। छवि = शोभा। वारिधि = समुद्र। ससि-कलङ्क = चन्द्रमा की कालिमा।

भावार्थ—कहीं पर सुन्दर स्त्रियां स्नान करती हुई दोनो हाथो से जल को ऊपर की ओर इस प्रकार फैंकती है मानो दो कमल मिल कर मोतियों के निर्मल गुच्छे निकाल रहे हो।

हाथो से अपने मुँह को धोती हुई स्त्रियां बहुत शोभा पाती हैं मानो कमल समुद्र के सम्बंध से * चन्द्रमा के कलंक (कालिमा) को मिटा रहे हो।

---

* चन्द्रमा को समुद्र से उत्पन्न हुआ २ माना जाता है इधर कमल भी अम्बुज (पानी से पैदा हुआ २) माना जाता है। अत. दोनो का सम्बन्ध बताया गया है।

सुन्दरि मसि-मुख नीर . ..

शब्दार्थ—इमि=इस तरह। लहलही=हरी भरी। नवल=नये। कुसुमन=फूलों का। मोहत=मोहित करती हैं। दीठि=दृष्टि। जहीं जहँ=जहाँ जहाँ। तितही=वहीं पर।

भावार्थ—चन्द्रमा के समान मुख वाली सुन्दर स्त्रियाँ जल में इस तरह शोभा देती हैं जैसे हरी भरी लता कमल तथा नये फूलों के बीच मे मन को मोहित करती है।

जहाँ जहाँ पर दृष्टि जाती है वहीं पर गढ़ (रुक) जाती है। कवि हरिश्चन्द्र कहते हैं कि गङ्गा की शोभा का वर्णन हो ही नहीं सकता।

भावना

रहै क्यों एक म्यान असि दोय . .. .

शब्दार्थ—असि=तलवार। भावै=अच्छा लगे। तन=शरीर। प्रबोधो=समझाओ। ह्यां=यहाँ। पतियावै=विश्वास करे। इनारुन=क्षुद्र फल। कदली वन=केलो का वन।

भावार्थ—कवि कहता है कि एक म्यान मे दो तलवारें कैसे रह सकती हैं, जिन नेत्रों मे भगवान् का रस भरा हुआ हो उन में दूसरा कैसे भा (अच्छा लग सकता है।

पृष्ठ ६=जिस शरीर तथा मन में भगवान् कृष्ण रमा हुआ हो उस में ज्ञान कैसे आ सकता है। ज्ञान इत्यादि तो भगवत् प्राप्ति के साधन हैं किन्तु जिस के शरीर तथा मन में स्वयं ही भगवान् विराजमान हो उस को ज्ञान की क्या आवश्यकता है?)

चाहे तिनजा भी समझाओ परन्तु यहाँ ऐसा कौन है जो कि तुम्हारे समझाने पर विश्वास करे ।

कौन ऐसा मूर्ख होगा जो कि अमृत का पान करके फिर इनारुन (गन्दे फल) खाने के लिये ललचाएगा। हरिश्चन्द्र कहते हैं कि व्रज तो ऐसा केले का वन है जो कि काटने पर भी फिर फलता है ।

सम्हारहु अपने को गिरधारी .

शब्दार्थ—सम्हारहु=सम्भालो । पाग=पगडी । अलक= सिर के घुंघरीले वाल । हलकत=हिलती हुई, डोलती हुई । ककन=कडा । नूपुर=घुघरू । किंकिणी करधनी । पियरो= पीला । परिकर=कमरबन्द । सहजहिं=आसानी से । बानो= भेस । नीके=अच्छी तरह ।

भावार्थ—हे गिरधारी, अब तुम अपने को सम्भाल लो, (अपने सिर पर मोर मुकुट तथा पगडी बांध कर बालों को सवार के रखो ।

छाती पर डोलती हुई वनमाला और बांसुरी को उतार कर रखो, चक्र (गदा, शख) इत्यादि (अपने शस्त्रों) को तीक्ष्ण करके रखो । कंगन की फांसी भी हटा दो घुंघरू को लेकर चटाओं करधनी को खींचो अच्छी तरह तैय्यारी करो ।)

हे कृष्ण ! तुम अपने पीत पट (पीताम्बर) को कमर बन्द बना कर कमर में कस करके बांधो क्योंकि हम उन व्यक्तियों में नहीं हैं जिन को कि तुम ने अनायास ही पार किया था (हम तो बहुत ही पतित हैं और हमारा उद्धार करने के लिये तुम को विशेष तैयारी करनी पडेगी इस लिये तुम अपने वेश को अच्छी तरह

बनाओ क्योंकि अब तो हरिश्चन्द्र के पार करने) की वाणी है।

१—'सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा' · ··· · · ···

शब्दार्थ—दैव=भाग्य, विधाता। प्रतिकूल=विरुद्ध, बखिलाफ। तजहु=छोडो। सुख—सूरज=सुखरूपी सूर्य। इत=यहां है=होगा। भुव- पृथ्वी।

भावार्थ—सब प्रकार से दैव विरुद्ध हो गया है इस लिये अब इस भारतवर्ष का नाश हो जायगा, अत. हे वीरवर! भारत की सब आशा छोड दो। अब यहाँ सुखरूपी सूर्य का उदय न होगा, अब वह दिन जिन दिनो भारत उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था) फिर यहाँ स्वप्न मे भी नहीं आएगा। स्वतन्त्रता, बल, तथा धैर्य सब नष्ट हो जाएँगे और अब यह मंगलमयी भारतभूमि श्मशान हो जायगी। चारो ओर दुःख ही दुःख फैल जायगा। इस लिये हे वीरवर! भारत की सब आशा अब छोड दो।

पृष्ठ १० —२—इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै।

शब्दार्थ—कलह=लड़ाई। हिय=हृदय। तम=अन्धकार। सिधरिहैं=चली जाएँगी। दासवृत्ति=नौकरी, गुलामी। अनुसरिहैं=पीछे चलेंगे। चारहु बरन=चारों वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

भावार्थ—इस भारतवर्ष में लडाई और बैर सब के हृदय में घर करेगा तथा चारों ओर मूर्खता का अन्धकार फैल जायगा। वीरता, एकता और प्रेम-भाव दूर चले जाएँगे। उद्योग, पुरुषार्थ, स्वावलम्बन को छोड कर सभी नौकरी के ही पीछे दौडेंगे। चारों वर्ण शूद्र बन कर गुलाम बन जाएँगे। इस लिये हे! वीरवर! अब भारत की सब आशा छोड़ दो।

ह्वैहैं इत के सब भूत पिशाच उपासी .. ..

शब्दार्थ—पिशाच=प्रेत। उपासी=उपासना करने वाले। स्वयं प्रकासी=अपने आप को सिद्ध मानने वाले। सगरे=सारे। सुपथ=अच्छे रास्ते को।

भावार्थ—अब यहाँ (भारत) के सभी लोग भूत प्रेतो की उपासना करने लगेगे, कई तो स्वयं ही अपने को सिद्ध समझने वाले बन जाएँगे। कभी नष्ट न होने वाले चिरस्थायी) सारे सत्य तथा धर्म भी नष्ट हो जाएँगे. अब भारत के निवासी ईश्वर से मुंह मोड कर नास्तिक हो जाएँगे, और सभी सन्मार्ग को छोड़ कर कुमार्ग पर चलने लगेगे। इस लिये हे श्रेष्ठ वीरो! अब भारत की सब आशा छोड दो।

अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सबहि पराई . .. . .

शब्दार्थ—कहँ=को। गहिहैं=पकडेंगें। धाई=दौडकर।

भावार्थ—अपनी वस्तुओं को सभी पराई देखेंगे। सब अपनी चाल (रीति. आचार) छोड कर के दौड कर (झटपट) दूसरो की चाल को ग्रहण करेंगे। अपने स्वार्थ के लिये हिन्दुओ के साथ लडाई करेंगे और दुष्ट पुरषो (मुसलमान इत्यादि नीच जातियो के चरणो को सिर पर चढा कर रखेंगे अर्थात् अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये आत्म-गौरव को त्याग कर नीचो के चरणो पर सिर झुकाएँगे) अपने कुल को छोड कर नीचो के साथ रहेंगे (अर्थात् हिन्दू धर्म को छोड कर मुसलमान या ईसाई बन जाएँगे) इस लिये हे श्रेष्ठ वीरो अब भारत की सब आशा छोड दो।

रहे हमहुँ कबहूँ स्वाधीन आर्य बलधारी—

शब्दार्थ - दैहैं=देंगे। मन्द=मूर्ख निकम्मे। तन छीन=क्षीण शरीर। छुधित=भूखे। पादुका=खड़ाऊँ अर्थात् जूता। त्रासा=मार डाँट डपट।

भावार्थ—कभी हम भी स्वतन्त्र, श्रेष्ठ और बल शाली थे इस बात को सभी अपने हृदय से भुला देंगे। ईश्वर-भजन से विमुख होकर सभी धर्म, धन तथा बल से हीन हो कर दुःखी हो जाएँगे। सभी आलसी, निकम्मे, दुबले-पतले एवं भूखे हो जाएँगे और नीच पुरुषों के जूतों की मार को अपने सिर पर बड़ी खुशी से सहन करेंगे। अतएव हे श्रेष्ठ वीरो! अब भारत की सब आशा छोड दो। अर्थात् अब इस की उन्नति होना असंभव है)

पृष्ठ ११—चलहु वीर! उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ —

शब्दार्थ—तुरत=शीघ्र। खड्ग=तलवार। परिकर कसि=फेटा बाँध कर। कटि=कमर। सर=बाण।

भावार्थ—हे वीरो! सब जल्दी से उठ कर विजय के झण्डे फहराओ, म्यान से तलवार को खींच कर युद्ध का रङ्ग जमाओ, कमर पर फेंटा बाँध कर उठो और धनुष पर बाण रखकर खींचो केसरिया वेश* सजा कर युद्ध का कंकण (हाथ मे) बाँधो अर्थात् लडाई के लिये उद्यत हो जाओ।

जौं आरजगन एक होई निज रूप सम्हारैं —

शब्दार्थ—आरजगण=आर्य (हिन्दू) जनता। गृहकलहि=

---

* प्राचीन समय मे क्षत्रिय लोग युद्ध के अवसर पर केसरी रङ्ग के वस्त्र धारण करते थे।

घरेलू झगडे । स्वान=कुत्ते । समर=युद्ध । मँझारी=मे ।

भावार्थ—यदि हिन्दू जनता सगठित होकर अपने रूप अर्थात् बल को सम्भाले अपने बल का संचय करे और आपस के झगडो को छोडकर अपनी कुल-मर्यादा का विचार करे तो ये नीच यवन आदि विधर्मी लोग कितने हैं और कौन सा इनका भारी बल है ? भला कभी सिंह के जग जाने पर कुत्ते युद्ध मे ठहर सकते हैं ? । जिस प्रकार सिंह के जगे रहने पर कुत्ते उसका सामना नहीं कर सकते इसी प्रकार हिन्दुओ के संगठित तथा जागृत होने पर नीच लोग भी उनका कुछ नहीं कर सकेंगे)

पदतल इन कहु दल्हु कीट त्रिन सरिस दुष्ट चय—

शब्दार्थ दलहु=कुचल डालो । त्रिन=तृण, घास, तिनक चय=समूह । बधन=मारना । श्रुति=वेद ।

भावार्थ—इन दुष्टो (विधर्मियों) के समूह को कीड़े और तिनको की तरह पैरो के तले कुचल डालो, इस मे तनिक भी शंका (सोच) न करो. क्योकि जहां पर धर्म होता है वहीं पर निश्चय ही जीत होती है । जो हित की बात ही नहीं सुनते तथा जो अच्छा काम ही नहीं करते उनसे और आशा ही क्या की जा सकती है । डंका बजाकर (ललकार कर अपनी सेना तैयार करके बस उस तरफ (उन विधर्मियो पर) चढाई करदो ।

उन को शीघ्र ही मार डालो चाहे वे युद्ध मे मिले या घर मे । इन दुष्टों के साथ (इन को नष्ट भ्रष्ट इत्यादि) पाप करने मे भी हमेशा धर्म ही समझना चाहिये (अर्थात् धर्मद्रोहियो को मारने मे पाप नहीं बल्कि पुण्य ही है) ।

चिउंटिहु पददल दबे डंसत हैं तुच्छ जन्तु इक—

शब्दार्थ—अरि=शत्रु । उपेछै=उपेक्षा करे ।

भावार्थ—चीटी जैसा एक क्षुद्र जीव भी पैर तले दब जाने पर डस देता है, ये (विधर्मी लोग) तो हमारे प्रत्यक्ष शत्रु हैं जो आर्य इन को (नष्ट करने में उपेक्षा करते है उन्हे धिक्कार है। उन्हे धिक्कार है जो आर्य होते हुए भी इन दुष्टो को चाहें और उन्हे भी धिक्कार (लानत) है जो इन से किसी प्रकार का सम्बन्ध मान कर निर्वाह करते हैं।

उठहु वीर ! तरवारि खींचि ....

शब्दार्थ—संगर=युद्ध। लेखनी=कलम। मारूबाजे=युद्ध के बाजे। चारन=भाट। असि=तलवार। बखतर=कवच। हय=घोडे। समरथर=युद्ध भूमि।

भावार्थ—हे वीरो! उठो और तलवार खींचकर इन्हें घमासान युद्ध मे मार डालो, अपनी लोहमयी लेखनी (तलवार) से शत्रुओं के हृदय पर आर्य बल का प्रभाव को लिखो। कही युद्ध के बाजे बजें, कहीं पर नगाडो पर आघात पड़े, कही झण्डे फहराएं, जिनको देखकर शत्रुओं के हृदय कॉप उठें।

पृष्ठ १२ —चारन बारहिं आय सुजस ... .

भाट आर्यों के सुयश को कहे तथा वन्दीजन (आर्यों के) गुणों का गान करें। भयानक तोपे छूटें, सब बन्दूके चलाएँ। तलवारें चमकें, शरीर पर युद्ध के कवच ठनकें (शोभा पावें)। घोड़े हिनहिनाएँ, रथों की गड़ गड़ाहट हो, समर भूमि मे हाथी चिंघाड़ें। आर्य लोग दुष्ट विधर्मियों का क्षण भर मे ही संहार करें। सब लोग भारत की जय ! भारत की जय पुकारें।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

जीवन परिचय

प्रेमघन जी का जन्म मिर्जापुर मे भाद्रपद कृष्णा षष्ठी सम्वत् १६१२ को हुआ था। इन के पिता गुरुचरणलाल उपाध्याय मिर्जापुर के एक प्रतिष्ठित रईस थे। इन की शिक्षिता माता ने इन को ५ वर्ष से पूर्व की आयु मे ही देवनागरी अक्षर सिखाये थे। पं० रामानन्द पाठक इन के अध्यापक थे। इन से ही इन को काव्य-रस के आस्वादन करने की लालसा होने लगी।

प्रेमघन जी भारतेन्दु के मित्रो मे से थे। ब्रज भाषा के प्रति इन को अपार प्रेम था। यह कविता केवल अपने मनोविनोद के लिये ही करते थे। इसी कारण से 'आनन्द-अरुणोदय' के अतिरिक्त इन का खडी बोली मे और दूसरा ग्रन्थ नही मिलता।

इन का देहान्त सवत् १६८० मे ६८ वर्ष की आयु व्यतीत करने पर हुआ।

—o—

आनन्द अरुणोदय

पृष्ठ १५—हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत फिर······ ···

शब्दार्थ—प्रबुद्ध = जाग्रत। आरत = दुखी। निशा = रात्रि। अतिशय = अधिक। प्रमुदित = प्रसन्न। दिवाकर = सूर्य। प्राची = पूर्व दिशा। पावन = पवित्र।

भावार्थ—बूढा भारत अब फिर जाग गया है और अपनी दुःखमयी दशा का अन्त समझ कर वह अत्यन्त प्रसन्न होगया

इस के बाद उस ने अपनी [illegible] और देखा कि) पूर्व दिशा [illegible] की आसमान (प्रभात कालीन उजाले) में सूर्य की [illegible] रही है और [illegible] नये नये [illegible] (जोश [illegible] की शक्ति [illegible] प्रकाश का फैला रही है । (इस का तात्पर्य यह है कि भारत [illegible] समय पहले [illegible] (सुप्त) अवस्था मे पड़ा हुआ था किन्तु अब इस नवीन युग मे वह वैसा नहीं रहा, वह अपनी मोह निद्रा से जाग गया है, उस के प्रत्येक भाग मे जागृति की झलक दिखाई देती है)

उद्यम रूप सुखद मलयानिल

शब्दार्थ—उद्यम = उद्योग, प्रयत्न । मलयानिल—मलय पर्वत (जहाँ पर चन्दन के वृक्ष उगते हैं) की हवा । कलिका = कली । कलाप—समूह । विलम्ब—देरी । पराग—पुष्पों की धूलि । मधुकर = भौंरा ।

भावार्थ—उद्योग रूपी सुखकारी मलयाचल का पवन दक्षिण दिशा से बहता हुआ) आता है जिस से शिल्प रूपी कमलों की कलियों का समुदाय खिल जाता है । यह पवन अपने देश मे तैय्यार हुई वस्तुओं की प्रेम रूपी धूलि उड़ाता है और सुखभरी आशाओं की धूल फैलाता है जिस से मन रूपी भौंरा ललचा जाता है, (तात्पर्य यह है कि भारत के दक्षिण भाग मे अब शिल्प के (मिल इत्यादि) काफी कारखाने खुले हैं जिन मे बहुत सी वस्तुएँ (वस्त्र इत्यादि) बनती है ।

वस्तु विदेशी तारकावली· ··· · ····· · ·

शब्दार्थ—तारकावली = तारों की पंक्तियाँ । लुप्त – अस्त

प्रतीची=पश्चिम दिशा। उलूक=उल्लू। कोटर=वृक्षो के खोखले, वे स्थान जिन मे पक्षी रहते हैं। उदीची=उत्तरदिशा। पथ= मार्ग। खग=पक्षी।

भावार्थ भारत की पश्चिम दिशा विदेशी वस्तु रूपी तारो की कतारो को अस्त कर रही है और उत्तर दिशा वैरी रूपी उल्लुओ के छिपने का खोल बनी हुई है। अब तो (भारत को) उन्नति का मार्ग साफ तौर से बहुत दूर तक दिखाई देता है, 'वन्दे मातरम्' रूपी पक्षियों का मधुर शब्द सुनाई पड रहा है। (आशय यह है कि जिस प्रकार पश्चिम दिशा मे उजाला होने पर तारे लुप्त हो जाते है इसी प्रकार भारत के पश्चिमीय देश विदेशी वस्तुओ को नाश कर रहे है परन्तु इस के उत्तर भाग मे भारत की उन्नति से द्वेष करने वाले व्यक्ति अब भी छिपे हुए हैं। इस की उन्नति के चिह्न अब स्पष्ट दीख रहे हैं और 'वन्देमातरम्' का मधुर गान सर्वत्र सुनाई पड रहा है।

तजि उपेक्षालस निद्रा ... .

शब्दार्थ—वृटिश राज्य=वर्तानिया के निवासियो (अंगरेजो) का राज्य। जग=दुनिया। मनुज=मनुष्य। विज्ञान= साइन्स कला=साहित्यिक और शिल्पमय रचनाएँ (आर्ट्स)।

भावार्थ—भारत (अब) उपेक्षा (लापरवाही) और आलस्य की नींद छोड़कर ज्ञानी बन (समझदार हो) उठ बैठा है। इसने बडी भारी दया धर पर स्वर्ग भी अब पर शुभ वाणी बोल उठा है कि हे आर्य वंशीय लोगो! तुम सब अब उठो और निःशंक देरी

शब्दार्थ—मिथ्याडम्बर=झूठे कार्य, दिखावटी बातें । तत्त्व=वास्तविक सिद्धान्त । प्रथा=रीति, मर्यादा । वर्णाश्रम=वर्ण-ब्राह्मण इत्यादि तथा आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास । धर्माचरण=धर्म का पालन ।

भावार्थ—दिखावटी बातों को छोड़ कर धर्म के मूल सिद्धान पर विचार करो । चारो वेदो मे वर्णित तथा चारो (सत्य त्रेता, द्वापर तथा कलि युगो मे प्रचलित रीति का प्रचार करो । चारो वर्णों तथा आश्रमो के लोग पृथक पृथक धर्म अर्थात् कर्त्तव्यो के अधिकारी हैं इस लिए छल एव कपट को छोड़ कर अपने अपने धर्म का विधि-पूर्वक पालन करो ।

सत्य सनातन धर्म ध्वजा को—

शब्दार्थ—सनातन=प्राचीन । गगन=आकाश । श्रौत=वैदिक । स्मार्त=स्मृति मे कहे हुए । अनुशासन=आज्ञा । दुन्दुभी=नगाड़ा । ज्ञानप्रदीप=ज्ञान का दीपक ।

भावार्थ सत्य (सच्चे) सनातन (प्राचीन) धर्म की ध्वजा को निश्चल होकर (स्थिर मन कर आकाश मे फहराओ । वेद तथा स्मृति द्वारा कही हुई धर्मों की आज्ञाओं का नगाड़ा बजाओ । ज्ञान के दीपक को जलाते हुए तथा प्रसिद्ध (पूज्य) सार्वज्ञ की जय जयकार की धूम मचाते हुए भगवान की निस्वार्थ भक्ति का शङ्ख बजाओ ।

भारत-वन्दना

पृष्ठ १८—जय जय भारत भूमि भवानी—

शब्दार्थ—भवानी=पार्वती, दुर्गा । पताका=झण्डा । [illegible]=

व्यापार मे लगे हुए। वनिक=व्यापारी, बनिये, वैश्य। सूद=शूद्र। समृद्धि=संपत्ति, धन।

भावार्थ—जिन के प्रताप से देवता तथा असुरों की हिम्मत भी नष्ट होकर गुम हो गई थी जिस देशके अभिमानी क्षत्रिय लोग मौत और दुश्मनो को तिनके के समान (तुच्छ) समझते थे, जहाँ की लाखों पतिव्रता नारियाँ, वीर पुरुषो की पत्नियाँ और विद्वानो की माताएँ बनी रहीं। जहाँ करोडो की संख्या में व्यापार मे तत्पर तथा धन दान करने वाले वैश्यलोग (बनिये) करोड़ो रुपयो के मालिक होते थे।

सेवत शिल्प यथोचित ... .

शब्दार्थ—ऐंडति=मस्त रहती है। अघानी=तृप्त हुई लुटत=लुट हुई। खोटानी=कम होगई। ग्लानि=दु:ख।

भावार्थ—जहां के शूद्र लोग यथोचित कार्य करते हुए शिल्पी और सेवा वृत्ति को करने वाले थे जिस से (देश की) सम्पत्ति बढती थी:(क्योंकि जब सभी वर्ण अपने २ व्यवसाय को भली भाँति करते थे तो देश में बेकारी इत्यादि फैलने न पाती थी और वैभव की वृद्धि होती थी) जिस देश का अन्न खा कर संसार की अनेक जातियाँ तृप्त हो कर मस्त रहती हैं। जिस देश का धन वैभव हजारो वर्षों से लूटा जाने पर भी कम नहीं हुआ। जो देश हज़ारों सालो से रोज़ नये नये दु:खो को सहता हुआ भी हृदय मे तनिक भी शोक नहीं करता (अर्थात् अपने साहस या धैर्य को त्याग कर घबराता नहीं)

धन्य धन्य पूरब सन............

शब्दार्थ—प्रनमत=प्रणाम करते हैं। जुग=दोनों। पानी=हाथ। एकता=संगठन। डह=मडर। सकानी=भयभीत होते थे। लहि=पाकर। धनधानी=धन धान्य।

भावार्थ पूर्व का देश अर्थात् भारतवर्ष धन्य है जिस के लिये दुनिया भर के राजाओं का मन अब भी ललचा जाता है। जिस देश को तीस करोड़ आदमी अर्थात् भारत मे वसने वाले) अब भी दोनो हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं जिन (भारतवासियों मे संगठन की शोभा को देख कर दुनिया के लोग डर से कॉप उठते थे। प्रेमघन कवि कहते हैं कि परमात्मा की कृपा पाकर (भारत भूमि) फिर उसी शोभा से युक्त हो जाए और उसी पुराने प्रताप को पाकर गुणवान लोग स्वाभिमानी होकर चिरकाल तक इस भूमि को धन्य धान्य से भरपूर करें।

पृष्ठ १८—नये नये मत चले—

शब्दार्थ—मत=सम्प्रदाय। लघु=छोटे। कर=हाथ। कलह=झगड़ा।

भावार्थ—(इस भारत मे) हमेशा नये नये मत (वौद्ध, जैन, आर्यसमाज इत्यादि) प्रचलित हुए और हमेशा झगड़े वढते गये। और भारत भूमि पर नये नये वड़े भारी दुःख टूट पड़े। भारत का संसार भर में फैला हुआ राज्य कई टुकडो मे वँट कर छोटे छोटे राजाओं के हाथो मे (शासन में) आगया और अब भारत मे वस पारस्परिक झगड़े ही हो रहे हैं।

रही सकल जग व्यापी—

शब्दार्थ—या हित=इस के लिये। आरत=पीडित। असी=तलवार।

भावार्थ—भारत के साम्राज्य की बड़ाई सारे जगत् मे व्याप्त रही (फैली हुई थी ऐमा कौन विदेशी राजा है जो इस भारत के लिये लालायित (लोभी) नहीं होता। भारतवर्ष को भूमि को वीर पुरुपो से रहित तथा दुःखी देख कर (बाहर के) सभी लोग यहां के आतुर (दु.खित कायर। पुरुपो पर तलवार चलाना आसान समझने लगे (अर्थात् सभी जीतने लगे)

जरमन जर मन मार—

शब्दार्थ—जरमन=जर्मन देश। जर=जले हुए। अनुचर=सेवक, अनुगामी। रूम सम=वाल के बराबर। फूस=घास, तिनका। पाय=पाँव। परसि=स्पर्श कर के। पारस=फारिस। पारस=पारस मणि, जिसके साथ छू जाने पर सभी धातु सोना बन जाते हैं।

भावार्थ—जर्मन देश जरा सा मन को मार (वश करके जिस देश का अनुगामी बन गया है। जिस देश के आगे रूम देश बाल के बराबर तथा—रूस देश, तिनके के समान बन गया था (अर्थात् ये सब देश जिस भारत के प्रभाव के सामने फीके हो गये थे)। (ऐ भारत ! तुम्हारे चरणों का स्पर्श करके फांस देश तुम को पारसरत्न के समान प्राप्त करता था (अर्थात जिस प्रकार पारसमणि के साथ स्पर्श करने से सभी धातु सोना बन जाते हैं उसी प्रकार फ्रांस भी तुम को स्पर्श कर के स्वर्णरूप अर्थात् समृद्धिशाली बन गया) तुम अफगानिस्तान को कान पकड कर अर्थात् बल पूर्वक राज्य पर बिठाते हो।
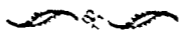
प्रतापनारायण मिश्र

मिश्र जी का जन्म आश्विन कृष्णा नवमी संवत् १६१३ में हुआ था। इन के पिता का नाम पं० संकटाप्रसाद था। यह फारसी, उर्दू और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इन को कविता करने का प्रेम भारतेन्दु की कविता तथा उन के पत्र 'कविवचन सुधा' के पढ़ने से हुआ था। इन्हों ने स्वयं भी एक 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकाला था। सँवत् १६४६ मे कालाकाँकर मे 'हिन्दोस्तान' पत्र के सहकारी सम्पादक भी बने।

मिश्रजी बडे मौजी कवि थे। नाटक लिखने में भी ये काफी निपुण थे। इन्हों ने २० पुस्तकें लिखीं और १२ पुस्तकों का भाषा मे अनुवाद किया।

आषाढ शुक्ला चतुर्थी सं० १६५१ मे यह स्वर्गवासी होगये।

ईश वन्दना

पृष्ठ २१—पितु मात सहायक स्वामि सखा—

शब्दार्थ—सखा=मित्र। नासनहारे=नाश करने वाले। सिगरे=सारे। अतिसै=अधिक। करुना=दया। भुलिहैं=भूल जाते हैं। महिमा=प्रभाव, बढाई। बुधिवारे=बुद्धि वाले, विद्वान्। शान्ति-निकेतन=शान्ति का घर। उजियारे=उजाला करने वाले।

भावार्थ—(भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं कि) हे भगवान्

आप हमारे माता, पिता, सहायक, स्वामी, मित्र, तथा एकमात्र नाथ हैं जिनका और कोई सहारा नहीं उनकी रक्षा करने वाले आप ही हैं। आप सब प्रकार से सुख देने वाले हैं और दु:खो तथा दुर्गुणो (बुराइयो) को दूर करने वाले हैं। आप सारे ससार की पालना करते हैं इस प्रकार आप अपने हृदय मे घनेरी दया रखते हैं। हम तो आप को भुला देते हैं परन्तु आप हमारी खबर लेना नहीं भूलते। (आप के हमारे ऊपर किये जाने वाले) उपकारों का कुछ भी अन्त नहीं। आप तो क्षण क्षण मे उपकार करते चले जाते हैं। हे महाराज! आप के इस बडे प्रभाव को थोडे ही बुद्धिमान पुरुष समझते हैं। हे कल्याण तथा शान्ति के घर! प्रेम के निधि! आप ही हमारे मन-रूपी मन्दिर मे प्रकाश करने वाले हैं। इस जीवन के भी आप जीवन हैं और इन प्राणों के आप प्रिय हैं। आप जैसे स्वामी को पाकर 'प्रताप हरि' और अब किस का (क्यों कर) अवलम्बन (आश्रय) करे।

साधो मनुवो अजब दिवाना —

शब्दार्थ—मनुवो – मन। परपंच=प्रपंच, सासारिक व्यवहार। गोहरावत=पुकारता है (कहता है)। मनमाना=मन चाहा साइय=मालिक, परमात्मा। घट घट=प्रत्येक शरीर।

भावार्थ-ऐ साधो! यह मन तो अजीब दीवाना है। माया मोह तो मनुष्य के जन्म को ठगने वाले हैं तो भी यह उन के रूप पर भूला फिरता है अर्थात् उन पर लट्टू हुआ २ है। संसार कपट तथा मिथ्याडम्बर को करता है। [illegible] का आडम्बर व

संसार को कम्पित करता है और स्वयं दुःख को सुख करके मानता है। उसे वहाँ की जरा सी भी चिन्ता नहीं जहां उसने मरने के बाद जाना है। वह मुख से तो 'धर्म धर्म' कहता रहता है परन्तु मन चाहे काम करता जाता है। जो परमात्मा स्थान-स्थान की बात जानता है उस से वह बहाना करता है। वह उस से घर का रास्ता पूछता है जो कि खुद ही भूला हुआ होता है। खेद है कि उस ने इतना भी नहीं जाना कि .....सज्जन (परमात्मा) कहाँ निवास करता है। इस मन के पीछे पीछे चलने से तुम्हें सुख कहाँ मिल सकता है, प्रताप कवि कहता है कि जो उस सुख देने वाले (परमात्मा) को पहचान लेता है वही सब से बडा समझदार है।

—o—

पृष्ठ २२—जागो भाई, जागो रात अब थोरी—

शब्दार्थ औसर=मौका। मींजि=मल कर। फोरी=फोड के। मोरी=मोड़ो। ठोरी=स्थान। गोरी=स्त्री। भोरी=सीधी। जिय=मन। जोरी=जोड़ कर।

भावार्थ—हे भाई! अब तो रात थोडी है, इस लिये जाग जाओ। नहीं तो काल-रूपी चोर जीवन-रूपी धन की चोरी करना चाहता है।

जब कि मौका टल जायगा तब तुम हाथ मल कर तथा सिर फोड़ कर पछताओगे। काम कर लो, सिर्फ कोरी बातें किसी काम न आएँगी।

जो कुछ बीत गई है उसको तो अब बीती समझो उसकी चिन्ता से मुँह मोड़ लो। आगे जिस बात में बने, मन एक

करके उसे करो। अर्थात् बीती बात के लिये चिन्ता न करो जहाँ तक हो सके आगे के लिये ध्यान करो। क्योंकि जो तो बीत गया वह फिर बन नहीं सकता।

माता, पिता, या स्त्री कोई किसी का साथी नहीं अपने काम ही साथी (सहायक) होते हैं शेष सब भारी भूल ही है।

सच्चे सहायक सुख देने वाले मालिक परमात्मा से ही अपने हृदय में प्रेम बनालो। प्रताप कहते हैं यदि तुमने परमात्मा से प्रेम न किया) तो तुम्हारी कोई बात भी न पूछेगा।

क्रन्दन

पृष्ठ २३ तब लखिहौ जो रह्यो —
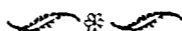
शब्दार्थ—कंचन=सोना। बिरछन=वृक्षों की। चून= आटा। नोन=नमक। टिकस=महसूल।

भावार्थ—जब कि इस भारतवर्ष में किसी दिन सोने की वर्षा होती थी अर्थात् धन प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। परन्तु अब वहीं पर (भारतीय जनसंख्या में से) [illegible] लोग रूखी रोटी के लिये तरसते हैं। और आमों की गुठली तथा वृक्षों की छालों को ज्वार तथा आटे में मिला कर (पीस कर) लोग अपने कुटुम्ब को पालते हैं। जहाँ अब नमक तेल, लकड़ी और घास पर भी महसूल लगता है। जहाँ की गरीब प्रजा को चना और चिरौंजी भी मोल लेने पड़ते हैं।

जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प,

शब्दार्थ—कृपी=खेती। वाणिज्य=व्यापार। तत्व=लाभ। रिन=कर्जा। सधारन=साधारण, कम धन वाले। महीप=राजा। रेजीडेएट=रेजिडेएट, यह ब्रिटिश गवर्नमेएट की तरफ से देशी रियासतो मे प्रतिनिधि के तौर पर रहता है और रियासतो की शासनव्यवस्था का निरीक्षण करता है।

भावार्थ—जहाँ पर खेती व्यापार, शिल्प, व्यवसाय मे तथा नौकरी इत्यादि कामो से भारतीयो का किसी प्रकार का भी कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। कहाँ तक हम इस देश की दुर्दशा) कहे, जहाँ पर राजा लोग भी कर्जे के बोझ से दबे हुए हैं फिर उन के धनकी क्या बात है जो कि बेचारे मामूली परिस्थिति के गृहस्थी हैं। जहाँ राजा भी रेजीडेएट से इस भय से डरते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि यह (रेजीडेएट) नाराज होकर हमारे धन तथा स्थान (रियासत) को (हम से) छीन ले।

तहँ साधारन लोगन की —

शब्दार्थ—दुचिताई=सन्देह। कर=लगान। अपरिमित=अधिक। देन परै=देने पडते हैं। द्रव्य=धन।

भावार्थ—वहाँ साधारण लोगो की क्या चल सकती है जिन को कि हमेशा असह्य दरिद्रता तथा अन्य दुःख घेरे रहते हैं। यहाँ पर रोज नये नये (कर्मचारी) लोग किसी भी कार्य के लिये क्यो न आवे तो भी प्रत्येक प्रजा-जन को अधिक लगान और चन्दा देना पड़ता है। कोई कुछ काम करे या कहीं से कोई आवे अथवा कहीं पर कोई घटना घटे तो हिन्दुस्तानियो को ही धन लगाना

पड़ता है। अर्थात् भारत से दूर देश मे होने वाले युद्धादि मे भी भारत को खर्चा देना पडता है।

लेनहार सुख दुःख —

शब्दार्थ—आय=आमदनी। व्यय=खर्च। अनुशासन=हकूमत। पठये जाही=भेजे जाते हैं। बहुधा=अधिकतर।

भावार्थ (लगान इत्यादि) लेने वाले प्रजा के सुख-दुःख आमदनी या खर्च को कुछ भी नहीं पूछते। देते देते तो हम सब प्रकार से छूछ छाछ खाली अर्थात् अकिंचन ही रह गये हैं। जिन्हे व्यवस्था (सम्भालने) के लिये यहां भेजा जाता है (अर्थात् असेम्बली, कमेटी इत्यादि) में चुन करके भेजा जाता है (और तो और) वे भी प्रचण्ड काम के बगैर साधारण लोगो से मिलने मे लज्जा करते हैं।

पृष्ठ २४—जिते दिवस ह्याँ रहहिं. ....

जितने भी दिन वे (पदारूढ पुरुष) यहां रहते हैं उतने थोडे समय मे भी लोगो को सन्तुष्ट करने के लिये वे कहीं किसी प्रकार का भी कष्ट सहना स्वीकार नहीं करते।

तनिकहु भोग विलास माहि—

शब्दार्थ भोग=सांसारिक पदार्थों का उपभोग। विलास=शृङ्गार की सामग्री, भोग विलास=ऐश या आराम। त्रुटि=कमी। नेकहि=ज़रा भी। पर्वतन-पहाडी स्थानो का। लहरें पवते हैं सेतन=गोरे। कृति=काम। कुजोग-दुख।

भावार्थ—वे अपने भोग विलास मे ज़रा सी भी कमी नहीं

करना चाहते। जरा सी भी गर्मी को देख कर पहाड़ी स्थानों पर (शिमला, काश्मीर इत्यादि) के मार्ग पकड़ लेते हैं। अपनी इच्छा के मुताबिक अच्छे तथा बुरे काम करते हैं। कुछ ही दिनों मे फिर वे विलायत को चल देते हैं, यह तो और भी अच्छी मुसीबत है। जितने भी कानून यहाँ लागू होते हैं उनकी चाल तो न्यारी ही होती है उनको अधिकारी (वायसराय इत्यादि) लोग जिस प्रकार बदलना चाहें उस प्रकार बदल सकते हैं।

बड़े बड़े बारेस्टर बहुधा . .... .

शब्दार्थ—बारिस्टर=न्याय विभाग का उच्च पदाधिकारी वकील। इकट=एक्ट, कानून। केहि अर्थ=किस लिये। पलटन=फौज।

भावार्थ -बड़े बड़े वकील वाद-विवाद करते २ हार जाते हैं परन्तु अधिकारी लोगो की जैसी इच्छा होती है वैसा करते हैं। प्रजा तो जानती ही नहीं कि कौनसा कानून (जो [illegible] एक्ट के नाम से पुकारा जाता है) किस लिये बना है? परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि वे किस प्रकार से उन कानूनों से बँधे रहते हैं। समय पड़ने पर आदर और धन को खोकर दण्ड सहन करते हैं और काम छोड़कर घर के बाहिर दौड़े २ फिरते हैं। पेट के लिये जो अपना सिर बेचकर फौज में भर्ती हो जाते हैं परन्तु वे भी गोरे रंग के बिना उचित आदर नहीं पाते।

गौर स्याम रंग भेद भाव............

शब्दार्थ—गौर स्याम रंग=गोरे और काले होने का भेद

अर्थात् यूरोपियन और भारतीय होने का विचार। नेटिव=देशीय प्रत्यक्ष=प्रत्यक्ष, स्पष्ट वधहू=कत्ल करो। लकुट=लाठी। शतशंक=सैकड़ो भयपूर्ण विचार।

भावार्थ—इस तरह गोरे और काले होने का भेद भाव दसो दिशाओं में फैला हुआ है। जो लोग 'नेटिव' देसी (अर्थात् भारतीय) नाम को प्रत्यक्ष रूप से हीन दृष्टि से देखते हैं। यदि (अंगरेज) कभी किसी का कत्ल करते हैं तो (वध दण्ड से) बिल्कुल ही बच जाते है परन्तु यदि ये भारतीय) कहीं पर लाठी भी हाथ मे लेते हैं तो धमकियाँ खाते हैं। उन (अर्थात् अंगरेजो) के सुख के लिये सभी अधिकारी यत्न करते रहते हैं। यदि ये भारतीय कभी अपने दुख को (किसी अधिकारी से) कहे। तो इनके हृदय मे सैकड़ो शंकाएँ उठ खड़ी होती हैं।

—०—

नाथूराम 'शंकर'

जीवन परिचय

शंकर जी का जन्म हरदुआगंज (अलीगढ़) के निवासी पं रूपराम के यहाँ चैत्र शुक्ला पञ्चमी संवत् १६१६ को हुआ था। सात वर्ष की आयु में ही इन की माता परलोक सिधार गई अतः इन के पालन पोषण का भार इन की नानी और बूआ ने उठाया।

यह कानपुर में नहर के दफ्तर में ६ वर्ष तक नकशा-नवीसी का काम करते रहे। बाद में इन्होंने घर आकर वैद्यक का काम प्रारम्भ किया। ये बड़े प्रसिद्ध वैद्य थे।

शंकर जी को कविता करने का शौक १६ वर्ष की आयु से ही होने लगा था। समस्यापूर्ति करने में तो ये अत्यन्त कुशल थे। खड़ी बोली में तो यह बहुत सुन्दर कविताएँ लिखते थे।

संग्रहणी रोग से पीड़ित होकर इन का हाल ही में परलोक-वास हुआ। हिन्दी जगत् में इन का नाम अमर रहेगा।

मेरा महत्त्व*

पृष्ठ २७—मंगल मूल महेश ... ...

शब्दार्थ—मंगल=कल्याण। महेश= बड़ा स्वामी, शिव।

---

*इस कविता में कवि ने 'अहं ब्रह्मास्मि' इस सिद्धान्त के अनुसार अपने को शिवरूप समझकर अपनी बड़ाई का वर्णन किया है। साथ ही अपने जीवन का भी कुछ उल्लेख किया है। जीव अवस्था में रह कर मनुष्य के ऊपर जो माया का आवरण चढ़ा

भावार्थः—महेश (ब्रह्मा) मंगल (कल्याण) की जड हैं, शकर मुक्ति दिलाने वाले हैं शंकर का उपदेश (विद्या ज्ञान) का घर है। हे शंकर भगवान् ! मैने जान लिया है कि आप संसार के आधार हैं (साथ ही मैने यह भी जान लिया है कि वेद उन्नति के अवतार हैं । अर्थात् वेदानुकूल आचरण करने से उन्नति होती है ॥१॥

मेरा विशद विचार .

शब्दार्थ—विशद = निर्मल । भारती - सरस्वती । वन्ध-विकार = वन्धन अर्थात् जीव भाव या अल्पज्ञता का दोप । प्रतिभा = नये नये भावो को उत्पन्न करने वाली बुद्धि । अवनति = पतन । ठेल रहा है = नीचे की तरफ धकेल रहा है ।

भावार्थ—मेरा शुद्ध विचार तो सरस्वती देवी का मन्दिर है जिस मे वन्धन—मै वन्धन मे हूँ अल्पज्ञ हूँ और सीमित हूँ, का दोप इस तरह अस्थिर है जिस तरह कि (मन की) कल्पना (अर्थात् मन मे एक के वाद दूसरी कल्पना उठती रहती है कोई स्थिर रूप से नहीं रहती) । उसी भारती-मन्दिर मे (चमत्कार पूर्ण बुद्धि का परिवार (अर्थात् अनेक विचार) क्रीडा करता रहता है । यह परिवार पतन की दशा को संसार

रहता है और फिर उसको दूर करने के लिये मनुष्य को जो प्रयत्न करना पडता है और फिर उसके वाद जिस शुद्ध तथा आनन्दमय स्वरूप की प्राप्ति होती है, इसका खासा चित्र कवि ने 'मेरा महत्व' नामक इस कविता से खींचा है ।

रूपी कुएँ मे गिग रहा है (अर्थात् मेरे शुद्ध विचार मुझे संसार मे वन्धने नहीं देते अपितु सदा मुझे इसमे गिरने से वचाते रहते हैं ॥२॥

रहे निरन्तर साथ · · ·

शब्दार्थ—निरन्तर=लगातार। दश लक्षण=दस लक्षणों वाला। सुकर्मोदय= अच्छे कामो का विकास। याग=यज्ञ। सकल= सारी। कामना – विषय-वासना।

भावार्थ—दस लक्षणो वाला धर्म* सर्वदा मेरे साथ रहता है। हितकारी शुभकर्मों का उदय मेरा हाथ पकडे हुए है (अर्थात् मेरी सहायता करता है) मैं रोज विधिपूर्वक गृहस्थ धर्मानुसार) पाँचो यज्ञ,† करता हूँ। सव वासनाओ को छोड़कर उनसे स्वतन्त्र घूमता हूँ ॥३॥

सारहीन हठवाद ·· ···

शब्दार्थ सारहीन=तुच्छ। हठवाद= हठ धर्म जैसे हठ-योग इत्यादि। पाखंड=दिखावटी धर्म। प्रमाद=गलती। कलाप=समूह। मदन=कामदेव, बुरी इच्छा।

भावार्थ--मैने वास्तविक तत्त्व से रहित हठधर्मी क्रियाओ को छोड़कर अपने आचरणो कामो) को सुधारा है। कपट,

---

*धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना) शौच, इन्द्रियो को वश मे रखना, धी, (बुद्धि) विद्या, सत्य और अक्रोध (क्रोध न करना) ये धर्म के दस लक्षण हैं।

† पढाना पितृ तथा देव तर्पण वलि वैश्वदेव, तथा अतिथि पूजन, ये गृहस्थियो के पाँच यज्ञ हैं।

पाखण्ड, दोप, झगड़े तथा विलास (शृङ्गार की क्रियाओं) को भुला दिया है। अब मेरे मन मे पापो का समूह और दुर्बुद्धि नही है। कामवासना, मोह, दुःख आदि बुरे लक्षण भी मेरे पास नहीं हैं ॥४॥

पृष्ठ २८—मुझ मे ज्ञान विराग ··

शब्दार्थ विराग= वैराग्य। बुद्ध – गौतम बुद्ध। सुधी– बुद्धिमान्।

भावार्थ—मुझ मे तो ज्ञान तथा वैराग्य भगवान गौतम बुद्ध से भी बढकर है। मेरा अटल प्रेम असीम अहिसा पर है। मेरे न्याय करने की रीति को देखकर मुझे सभी रामचन्द्र कहेगे और मेरी विचित्र नीति की परीक्षा करके बुद्धिमान लोग मुझे कृष्ण कहेगे (अर्थात् मै न्याय मे राम तथा नीति मे भगवान कृष्ण के समान हूँ) ॥५॥

रोग हीन बलवान ·

शब्दार्थ—तन=शरीर। सत्यसम्पादक=सत्य को करने वाला। मृदु=कोमल। घोप–शब्द।

भावार्थ—मेरा शरीर रोगो से रहित (तन्दुरुस्त), बलपूर्ण और सुन्दर है। मेरा मन पक्के प्रेम से भरा हुआ सत्य आचरण (सच्चे काम) करने वाला है। मेरे विचार पवित्र कामो को उत्पन्न करने वाले हैं (इस प्रकार मेरे मे जरा भी दोप नहीं है। मेरे समान कोई दूसरा उदार (खुले दिल का) नहीं है और न ही कोई (मेरे समान मधुरवाणी वाला अर्थात् मीठे बोल बोलने वाला है ॥६॥

वी।राग बिन रोप

शब्दार्थ--वीतराग=ममता से रहित । रोप=क्रोध । मुनिनायक--ऋषियों का नेता। निगुरापन=गुरु न होने का दोष, गुरु की कमी ।

भावार्थ--मैंने एक अच्छे मुनि को पा लिया है जो कि ममता और क्रोध से रहित है, उस को गुरुभाव से मान कर मैंने गुरु रहित होने का दोष (' गुरु बिना गति नहीं' इत्यादि उक्तियों से गुरुधारण न करना भी साधक के लिये दोष ही माना जाता है) मिटा दिया है। यद्यपि मैं सिद्ध तथा जगतगुरु कहलाता हूँ तथापि गुरुमुख (गुरु के मुख से सुने हुए । उपदेश को मन्त्र मान कर (उससे) मैं अपना मन बहलाता हूँ ॥ ७ ॥

दुखरूप सब अग ·· · ···

शब्दार्थ—अंग=भाग । अविद्या=अज्ञान । अपरा=वेदादि शास्त्र रूपी विद्या । परा= उपनिषदों की विद्या । अखिलानन्द= सम्पूर्ण आनन्दों से युक्त ।

भावार्थ -(गुरु से मन्त्र लेकर मैंने) अज्ञान के सभी दुखदायी भागों को पहचाना। वेदादि शास्त्रमय विद्या के सुख से परिपूर्ण प्रसंगों के अर्थ जान लिये। अविद्या और अपरा इन दोनों विद्याओं पर परा विद्या अपना अधिकार रखती है, और वह उस सर्वानन्दघन और अनन्त परमात्मा के अद्वैतभाव (समभाव, एकता) से योग (मेल) करा देती है ॥ ८ ॥

जिस की उल्टी चाल · ·

शब्दार्थ—सुगम=आसान, शुभ, (मार्ग) । कराल=

भयानक। खलदल = दुष्टों का समूह।

भावार्थ—जिस (माया) की उलटी चाल मनुष्य को सीधा और उत्तम रास्ता नही दिखाती है। जिसका भयानक कोप (परमात्मा के साथ) मिलना नही सिखाता। जो दुष्ट-जनो को घोर नरक मे डाल देती है वह माया चारों ओर खुले तौर से अपना खेल खेल रही है ॥६॥

जो सब के गुण कर्म

शब्दार्थ—ध्रुव = स्थिर, अटल। भद्रमुख = कल्याणकारी। घलित = घिरी हुई भरी हुई।

भावार्थ—जो सब के गुण कर्म और सारे स्वभावों को बताती है और जो अविनाशी धर्म तथा अधर्म के शुभ और अशुभ (फल) का बोध (ज्ञान) कराती है। जिस मे जगत रूपी कल्याणकारी भाव भरा हुआ है। वही अनेक प्रकार के व्यापारों (क्रियाओ) से भरी हुई विद्या अपरा कहलाती है ॥१०॥

पृष्ठ २६—जीव जिसे अपनाय

शब्दार्थ—योग समाधि = योग धारणा। भावना = वासना। विवेक = विचार।

भावार्थ—जीव (मनुष्य) जिस विद्या को अपना कर फूल के समान विकसित हो जाता है। योग से समाधि लगा कर ब्रह्म (परमात्मा) से मिल जाता है। (मिल जाने के बाद) वह उसमे एक और अनेक भावनाएँ रख कर रहता है तो उसे वह सत्यज्ञान (यथार्थ ज्ञान) और परा विद्या कहने लग जाता है। अर्थात् वह ज्ञान जिससे वह प्रसन्न हो जाता है

तथा परमात्मा से उसका एकीकरण हो जाता है और वह उससे अनेक संबंध स्थापित कर लेता है वह परा विद्या कहलाती है ॥११॥

जिसमे जड चैतन्य— ..

शब्दार्थ—जड = निश्चेष्ट पदार्थ। चैतन्य = चेतनता-(होश) युक्त जीव इत्यादि । संघात = समूह । जीवनमुक्त = शरीरधारी होने पर भी सांसारिक बन्धनो से रहित।

भावार्थ—जिस मे जड तथा चेतन सभी प्रकार के पदार्थों के समुदाय व्याप्त रहते हैं, जिसमे अनन्य 'अर्थात् केवल मै ही हूँ इस प्रकार की अनुभूति होती है और अन्य किसी वस्तु का बोध नहीं रहता (अर्थात् सम्पूर्ण संसार को अपना ही स्वरूप देखता है)। जिसके मन मे भगवान से मिलने का (एक हो जाने का) रस भर जाएगा, वही ही जीवनमुक्त होकर मौत से छूट कर अमर हो जाएगा ॥ १२ ॥

वालकपन में राँड .. . .

शब्दार्थ—राँड = विधवा। बुढवा = बूढा। जरा = बुढापा।

भावार्थ—बचपन मे मैने अविद्या रुपी रांड की जड़ काटी (अर्थात् अविद्या को मूल सहित नष्ट किया) जब मैं जवान हुआ तो मैंने अपरा विद्या रूपी खीर तथा खांड का आस्वादन किया (अर्थात् अपरा के तत्वो को जाना) अब तो इस वृद्धावस्था मे मै परा विद्या के लेखों को वाँच रहा हूँ (अर्थात् अब विद्वान होकर उपनिषदों का मनन कर रहा हूँ) और (अपने जीवन का) कल्याण देखता हुआ बुढापे का निरीक्षण (देख भाल) कर रहा हूँ ॥ ३ ॥

[illegible] ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—[illegible] । मन्त्र—शास्त्र । निष्णात—चतुर पण्डित । [illegible]—मूर्खता का [illegible] । [illegible]—[illegible] । [illegible] । [illegible]—असम्भव ।

भावार्थ—मैं [illegible] और मन्त्र [illegible] था [illegible] किया और मन्त्र में सम्पूर्ण मन्त्रों में पारंगत होकर [illegible] कहलाया । लालच के वश में पाकर मैंने मूर्खता का [illegible] लिया था (अर्थात् मैं लोभ से मोहित हो गया) । सिर्फ दीन भाव करके ही मैंने कठिन या दुर्लभ वस्तुओं को गिना लिया था (अर्थात असम्भव बात को भी सम्भव बना लिया) ॥ १४ ॥

[illegible] प्रतारक संग [illegible]

शब्दार्थ—प्रतारक=धोखा देने वाले । रसरंग=प्रेम रस की सामग्री, रसिक विषय । यथारुचि=इच्छा के अनुसार । विधि=विधान, उपदिष्ट कार्य । निषेध=विरुद्ध अथवा अनुदिष्टकार्य ।

भावार्थ—मेरे साथ धोखेबाज़ रहे जिन्होंने केवल छल की लता को ही बढ़ाया । मेरे मन में रसिक विषय ही अच्छे लगते थे और मेरा उनमें प्रेम का ही बोलबाला रहता था । मैं अपनी इच्छा के अनुसार ही खाता पीता तथा घूमता था । मैं कभी भी विधि या निषेध के भार को सिर पर धारण नहीं करता था (अर्थात अमुक काम करना चाहिये और अमुक नहीं इस प्रकार जो शास्त्रादि में नियम बनाए हैं, उन नियमों के बन्धनों में मैं नहीं फँसता था) ॥ १५ ॥

बाल विवाह विशाल ......

शब्दार्थ:—विशाल बड़ा भारी। विपरीत = विरुद्ध, वखिलाफ। अवला = स्त्री।

भावार्थ:—बड़ी शान शौकत से बालविवाह-रूपी जाल रचकर मैंने बड़ा पाप कमाया। व्रत के समय ब्रह्मचर्य को व्यर्थ ही उलटे कामों मे लगाकर व्यर्थ गँवाया। (अव विवाहित हो जाने पर) स्त्री ने मुझे बड़ा पछाड़ा और लड़का पैदा कर (इस प्रकार) मुझे बाप बना कर (उसके पालन पोषण का भार मुझ पर डाल कर, मुझे बन्धन मे फंसा कर) बिगाड़ दिया ॥१६॥

पृष्ठ ३०—प्यारे गुरु लघु लोग ..

शब्दार्थ—गुरु = बड़े लोग, माता पिता इत्यादि। लघु = छोटे लोग। सुरधाम = स्वर्ग। वनिता = पत्नी।

भावार्थ—मेरे प्रिय माता-पितादि गुरुजन और छोटे सम्बन्धी घर को भूलकर मर गये और अपने कर्मों के फलों का उपभोग करके स्वर्ग को चले गये। जब कि मेरी धर्मपत्नी ने मेरा साथ छोड़ दिया (वह भी स्वर्गसिधार गई) तो मेरी सुबुद्धि ने मुझे सुधार के कामों में लगा दिया ॥१७॥

पहले पुत्र अकाल: .. ..

शब्दार्थ:—अकाल = असमय, बेमौका।

भावार्थ:—(पत्नी के स्वर्गवास हो जाने पर परमात्म ने मेरे पहले पुत्र को मृत्यु के मुँह मे डाल दिया। फिर दूसरा पुत्र मनोहरलाल हुआ उसे मैंने सुख से पाला पोसा। जिस समय मनोहरलाल पैदा हुआ उस ने धन से परिपूर्ण घर को पाया। अ

तो भगवान् ने संसार ही मेरा परिवार बनाया है अर्थात् अब मैं सब को आत्मीय (समान) दृष्टि से देखता हूँ ॥१८॥

जिस जीवन की चाल

शब्दार्थ—अंधेर =अत्याचार, अन्याय । कर्मकलाप = कर्मों का समूह ।

भावार्थः -जीवन (जिन्दगी) की चाल मेरा सदा बुरा करती थी वह समय बीत गया और वह अन्याय का अन्धेरा हट गया अब बीते हुए कामों को बताना उचित नहीं (इस प्रकार) अपने कामो को बता कर अपने मन को सताना कष्ट देना) भी ठीक नहीं ॥१६॥

हिमगिरि ज्ञानागार

शब्दार्थ—हिमगिरि= हिमालय पर्वत । ज्ञानागार =ज्ञान का घर । धवल =(सफेद) धवल गिरि । मेधा =धारणा शक्ति से युक्त बुद्धि । नन्दा =(आनन्द देने वाली) नन्दा देवी नामक हिमालय का दक्षिणीय शिखर । ध्रुव = अटल, अनश्वरता । पातकपुंज— पापसमूह । पजार—जला कर ।

भावार्थ—मेरा ज्ञानमय मन्दिर हिमालय है. धारणा वाली बुद्धि धवलगिरि है और अनश्वर भाव नन्दा देव नाम वाला हिमालय का शिखर है. उस ज्ञान और मेधा गिरि मे डुबकी मार कर के मेरा मन निर्मल होगया है । मैंने पाप-समूह को जला कर बहुत पुण्य कार्य किये हैं और ज्ञान का प्रकाश फैला कर मोह रूपी अन्धकार को दूर कर दिया है ॥२०॥

सकते हैं (अर्थात् अन्धपरम्परा-न्याय से किसी भी ... को अपने तर्क और अनुभव के बिना ... पसन्द नहीं है) ॥ २२ ॥

पृष्ठ ३१—मन कर मेरा जोड़

शब्दार्थ—कुन -मूर्ख। ...= विद्वान। ... — ...मान अर्थात् वादविवाद से परिपूर्ण (... ...) में। ...दिकदल= वेद के अनुयायियों का समूह।

भावार्थः—कोई अनजान या मूर्ख मेरा मुकाबला करने ... लिये मेरे सामने न अड़ेगा। पण्डित भी निडर हो, विद्वान ... (हौंसला बाँध कर) न लड़ सकेगा। वादविवाद करने में कोई भी भारत का धर्म मेरे साथ न भिड़ सका। वैदिक धर्मियों में से भी कोई अपनी चातुरी न दिखा सका ॥ २३ ॥

मैंने असुर अजान ...

शब्दार्थ—असुर= राक्षस, दुराचारी। पिशुन= चुगलखोर। अवधूत= साधू संन्यासी या सिद्ध। चपला= चञ्चल। ... सकती= दलन 'नाश' कर सकती है।

भावार्थ—मैंने बड़े २ अनेकों असुर (राक्षस मूर्ख ... तथा चुगलखोर पछाड़ दिये और मेरे से बड़े २ अभिमानी साधू सन्त भी हार गए। जिस मण्डली की चञ्चल चाल (अर्थात् दुष्ट व्यवहार) देश का हनन कर सकती है उस दल की दाल मेरे यहाँ नहीं गल सकती (अर्थात् वे सब दुष्ट मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते) ॥ २४ ॥

हेकड़ होड़ दबाव

तो उसकी कृपा से सदा फूलता फलता रहेगा। और जो उसके सामने अभिमान करेगा वह दुःख पाएगा ॥ २७ ॥

मैं असीम अभिमान ·

शब्दार्थ—महामहिमा=अतिशय प्रभाव। निदान - अन्त। प्रतियोगी=मुकाबला करने वाले, शत्रु। निगमागम - वेद तथा शास्त्र। मर्म=रहस्य। तदनुसार=उसी के मुताबिक। सद्धर्म=उत्तम धर्म।

भावार्थ—मैं अपने असीम सीमा रहित, बेहद) और अतिशय प्रभाव के बल से अन्त तक भी किसी भी सामना करने वाले झुण्ड (विरोधी पार्टी) से नहीं डरता। (जब कोई मुकाबले पर होता है तो मैं) मैं वेद और शास्त्रों के रहस्य का विचार कर लिया करता हूँ और उसी के अनुसार फिर अच्छे धर्म का प्रचार करता हूँ ॥ २८ ॥

पृष्ठ ३२—तन में रही न व्याधि ·

शब्दार्थ—व्याधि=शारीरिक रोग। आधि=मानसिक पीडा। उपाधि=दोष। गही=पकड़ी। अनघ=पाप रहित। अदम्य=दमन करने के अयोग्य।

भावार्थ - मेरे शरीर मे न कोई रोग रहा है न मन मे कोई पीडा रही है और न ही अन्य किसी प्रकार का दोष ही रहा है, अब मैंने अनन्य (अर्थात् निष्काम) समाधि ग्रहण की है। मैं निष्पाप शिष्य को सब प्रकार के सुधार की शिक्षा दे सकता हूँ तथा अपना न दबाने योग्य अभिमान भी दिखा सकता हूँ ॥ २९ ॥

मुझ को साधू समाज······

शब्दार्थ—साधु-समाज=सत्पुरुषों का समूह। सर्वोपरि=सब से ऊपर, सर्वश्रेष्ठ।

भावार्थ—सारे साधु और सन्त मुझे शुद्ध-जीवन समझेंगे और सिद्ध तथा दुनिया के लोग भी मुझे सब से अच्छा समझेंगे। मैंने अपना नाम स्वच्छ तथा प्रसिद्ध कर लिया है। मैंने अपने पवित्र जीवन का चित्र स्पष्ट दिखा दिया है ॥ ३० ॥

यद्यपि लालच दूर .....

शब्दार्थ—मठ=घर। सुयश मधुभूखा=अच्छे यशरूपी शहद का भूखा।

भावार्थः—यद्यपि मैंने मन से लालच को दूर भगा दिया है। तो भी मेरा मठ (घर) धन से सदा भरा ही रहता है। मैंने सब सुख और भोग छोड़ दिये हैं तथा विषय-वासना के रस से भी अब उदासीन होगया हूँ। सब लोग सुयश रूपी मधु ही दान करें (बस) मैं इसी का ही भूखा हूँ। मुझे यश के अतिरिक्त अन्य कुछ न चाहिये ॥ ३१ ॥

वेद और उपवेद......

शब्दार्थ—वेद=ऋग्, यजु, साम और अथर्व। उपवेद=ब्राह्मण ग्रन्थ। अङ्ग विधायक=वेद के छन्दादि अंगों को करने वाले। पौराणिक=पुराणों से सम्बन्ध रखने वाले।

भावार्थ—मैं वेद तथा उपवेदों को (भलीभाँति) पढ़ा सकता हूँ। उन के जो अङ्ग-प्रत्यंग (मीमांसा, व्याकरण इत्यादि) हैं उन को भी उसी प्रकार पढ़ा सकता हूँ। मैं तर्कशास्त्र की विचित्र लहरों (कल्पनात्मकवाद) को भी पूरे तौर से दिखा

सकता हूँ। और (यदि कहो तो पुराणों के रसिक प्रसंग (कथाएँ) भी सिखा दूँ ॥३२॥

ग्रन्थ बिना अनुवाद......

शब्दार्थ—अनुवाद=तर्जमा Translation। अनुचर—सेवक, अनुयायी। अल्पज्ञ=कम ज्ञान वाला।

भावार्थ:—(किसी ग्रन्थ, डिक्शनरी आदि की सहायता के बिना) किसी भी भाषा का अनुवाद कराना चाहो तो करा सकते हो केवलमात्र अनुवाद ही नहीं) (साथ ही) यदि चाहो तो उसका रस खड़ी बोली मे भी चख सकते हो। यदि एक अल्पज्ञ (कम पढ़ा-लिखा)उस को न समझ सकेगा (तो वह) मुझे सर्वज्ञ (विद्वान) कैसे कहेगा अर्थात् मेरे अनुवाद को एक अनपढ़ भी भली भाँति समझ सकेगा॥ ३३॥

यदि मैं व्यर्थ न जान

शब्दार्थ=तुकड़कुल तुकबन्दी* करने वाले कवियों का समुदाय। हेकड़ी—आकड़, आग्रह पूर्वक अभिमान।

भावार्थ—यदि मैं (कविता बनाने के काम को) वृथा न मान कर कविता का कार्य करता तो क्या तुकबन्दी करने वाले कवि लोग मेरा सम्मान न करते अर्थात् अवश्य करते। मेरे लेखों को देख कर तो लेखकों ने अपनी कलम छोड़ दी है और सम्पादक लोग (समाचार पत्रों के प्रधान कार्यकर्ता को सम्पादक या एडीटर कहते हैं।) भी अपने अभिमान छोड़ चुके हैं

---

* छन्द के चरणों के अन्तमे जब एक ही (व्यञ्जन या स्वर आया करता है तो उस की समता को तुक कहा जाता है। पाँच प्रकार की होती है।

(अर्थात् लेखक तथा सम्पादक दोनों मेरी तुलना नहीं कर सकते ॥३४॥) ।

पृष्ठ ३३—शिल्प रसायन सार ......

शब्दार्थ—रसायन = वह औषधी तथा आचार जिन से मनुष्य को बुढापा शीघ्र नहीं आता और आयु बढ़ जाती है। अभिनव = नये । आविष्कार = नवीन वैज्ञानिक खोजे। भूमियान = पृथ्वी पर चलने वाले यान, रेलगाडी इत्यादि । जलयान = जल मे चलने वाले नाव, आदि । विमान = हवाई जहाज । यन्त्र = मशीने। अजीब = अद्भुत ।

भावार्थः—शिल्प (कारीगरी, अच्छी २ औषधियो के सा॰ जो कुछ चाहो सिखला दूं। नए २ आविष्कार (ईजादे) कर दूं, गाड़ियां, मोटरे, रथ आदि, पानी वाले जहाज (स्टीमर) और हवाई जहाज़ आदि सब कुछ बना सकता हूं। मै ऐसी अजीब मशीने भी बना सकता हूँ जो कि जीवित-पदार्थों की तरह प्रतीत हों ॥ ३५ ॥

गोल भूमि पर डोल .. ....

शब्दार्थ—गगन = आकाश । पोल = खाली स्थान, रहस्य । वेध कर = बीच मे छेद कर के । अवलंब = सहारा, आधार । छोर = किनारा । लम्ब = आधार स्तम्भ ।

भावार्थ—मैने इस गोलाकार पृथ्वी पर डोल डोल (भ्रमण कर के सभी देश देख लिये । आकाश के रहस्य को खोल कर के और तारो को वेधन कर के परीक्षण किया (अर्थात् खगोल विज्ञान के सभी रहस्यों का पता लगाया) मुझे तो चारों तरफ

(भिन्न भिन्न देश मिले और मैंने कहीं अवलम्ब आश्रय) न पाया। परमात्मा ने इस विश्व के जिस आधार भूत लम्बन स्तम्भ की नोक को छुआ है उस का भी कुछ पता न मिला। (पौराणिक कथाओं के अनुसार ब्रह्माण्ड के मध्य मे ऊपर से नीचे तक एक लम्बा तेजोमय स्तम्भ है जिस के ऊपर और नीचे भगवान् विद्यमान हैं) ॥ ३६ ॥

दे दे कर उपदेश· ·······

शब्दार्थ देशी मण्डल=भारतीय जनता । चञ्चुप्रवेश= चोंच डालना, अर्थात् हस्तक्षेप करना । सरिता=नदी । कुटी= झोंपड़ी । ग्रास=भक्षण, निगलना ।

भावार्थ—मै उपदेश दे दे कर के देशी लोगो मे पूजा गया। राज विद्रोही (क्रान्तिकारी) संघो मे मैने हस्तक्षेप न किया। अब तो मैं किसी नदी के किनारे एक झोंपडी मे निवास करूँगा और इस अस्थिर शरीर को छोड कर मृत्यु को भी निगल जाऊँगा (अर्थात् अमर या मुक्त हो जाऊँगा) ॥ ३७ ॥

मेरा अनुचर चक्र ···· ···

शब्दार्थ अनुचरचक्र=अनुगामी गण । चुटीली=चोट लगने वाली । रौंद=घूमना । वक्र=टेढी । कुचालो=बुरी चालों । मानव=मनुष्य ।

भावार्थ—मेरे अनुयायी लोग चोट लगने वाली चालो को प्रयोग मे लाएँगे और घूम घूम करके कुटिल और बुरे व्यवहारो को कुचल डालेंगे। मनुष्यों की दुर्दशा को दूर कर देंगे और भारत मे पूरी शान्ति भर देंगे ॥ ३८ ॥

सुन कर मेरी आज ·······

शब्दार्थ—राम कहानी = आत्मकथा, आपबीती । आदर दानी = सत्कार करने वाले । प्रवीण = निपुण । लंपट = ठग । लबार = असत्य बोलने वाले ।

भावार्थ—आज मेरी इस लम्बी आत्मकथा को सुन कर आदर करने वाले पुरुष 'हे मुनिराज ! तुम धन्य हो' इस प्रकार कह उठेंगे । उदार, निपुण, पण्डित तथा प्रवीण (चतुर लोग मुझे प्रणाम करेंगे और धूर्त, मूर्ख और मिथ्यावादी पुरुष तो व्यर्थ मे मेरी निन्दा करेंगे ॥ ३६ ॥

काल-कौतुक

पृष्ठ ३४—सविता के सब ओर··· ···

शब्दार्थ—सविता = सूरज । मही = पृथ्वी । चकराती = घूमती है । कल्प = यह समय का एक बड़ा विभाग है जिस मे १४ मन्वन्तर अथवा ४ अरब और ३२ करोड़ वर्ष होते हैं । कालचक्र = समय को पहिये के घूमने के समान परिवर्तनशील होने के कारण ' (चक्र') का आरोप किया जाता है ।

भावार्थः—पृथ्वी रात-दिन सूर्य के चारो ओर घूम २ कर चक्कर काट कर महीने और वर्ष बनाती है । (इस क्रम का) कल्प (युगो) तक भी अन्त नही आता । इस चंचल काल चक्र मे हमारा जीवन भी चलता ही जाता है । अर्थात् पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर चक्कर काटने से दिन और रात बनते हैं दिन-रातो से महीने और महीनो से वर्ष और वर्षो से कल्प । यह काल चक्र कभी स्थिर नहीं होता (रुकता नही) ॥ १ ॥

छोड छदन प्राचीन··· ···

शब्दार्थ—छदन=पत्ते । दल=पत्ता । विकाश=विकास, फैलाव । रूपक=मूर्ति ।

भावार्थ (चैत्र मास मे) वृक्ष पुराने पत्तों को छोडकर नए पत्ते को धारण करते हैं। यह दो रंग वाला चैत्र (क्योकि इस मे पुराने तथा नये पत्रो के विद्यमान होने के कारण दो प्रकार के रंग प्रतीत होते हैं)। पुरानी वार्षिक वस्तुओ का) विनाश होता देखकर भिन्न भिन्न रूप तथा मूर्तियो के दर्शन कराता है। खेद है! (इसी तरह होते होते) इस अस्थिर कालचक्र मे हमारा जीवन भी व्यतीत होता जाता है) ॥ २ ॥

सूख गये सब खेत··· ····

शब्दार्थ—वीत=जोतने बोने वाली जमीन का गीलापन मेदिनी=ज़मीन। धूलि=गर्द।

भावार्थः—सारे खेत सूख गए इस (वैशाख) ने सारी हरियाली भी सुखा दी। पृथ्वी मे से गीलापन निचोड़ कर इसे रूखा बना डाला। फिर यह (वैशाख) धूल ही धूल उडाता है। अर्थात् वैशाख मास मे अन्नादि पक जाते हैं हरियाली मिट जाती है लूएँ चलने लगती हैं। इस प्रकार हमारा जीवन भी काल चक्र मे बीता जाता है ॥ ३ ॥

झील सरोवर फूँक ········

शब्दार्थ—सरोवर=छोटे तालाब । फूंक=सुखा । पजारे= जला डाले। सोते=स्रोत, चश्मे । कुरंग=हरिण ! तृष्णा= प्यास।

भावार्थ—(ज्येष्ठ मास मे) झील तथा तालाब सूख गये,

शीतल वह समीर ..

शब्दार्थ—समीर = वायु। हायन = वर्ष। दैवज्ञ = ज्योतिषी। अग्रहायन = वर्ष का प्रारम्भ।

भावार्थ—मार्गशीर्ष मे ठण्डी वायु बहती है और सब को सर्दी सताने लगती है। आग्रहायण के प्रारम्भ मे ज्योतिषी साल भर का भेद (शुभ या अशुभ फल) बताता है।* (क्यों कि वर्ष के प्रारम्भ मे पचाग इत्यादि नये निकलते हैं जिन मे वर्ष की भावी घटनाओ का वर्णन होता है) ॥१०॥

टपके ओस तुषार

शब्दार्थ—तुषार = बर्फ। कट कट बाजें = कट कटाते हैं।

भावार्थ—पौष मे ओस टपकता है बर्फ, पडती है और पानी जम जाता है। दाँत (सर्दी के मारे) कटकटाते हैं और जल वीर (जल से न डरने वाले) लोगो की नानी भी मर जाती है। (अर्थात् अब वे जल मे नहाने की हिम्मत नहीं करते) पौष रूपी पुजारी केवल नहाता है अथवा पुजारी ही केवल पौष मास में नहाता है ॥११॥

हुआ मकर का अन्त ..

शब्दार्थ—मकर = मकर राशि, यह १० वीं राशि है माघ मास मे सूर्य इसी राशि मे रहता है। अम्बा = आम के वृक्ष। बौरे = बौरो के गुच्छो (डालियों) से भर गये। धौरे = सफेद। मधु = वसन्त।

* प्राचीन वैदिक काल मे वर्ष का प्रारम्भ मार्गशीर्ष से माना जाता था, क्यो कि इसी समय नये नये अन्न पक कर तय्यार होते हैं। गुजरात प्रान्त में अब भी यह रीति प्रचलित है।

भावार्थ--माघ मास मे मकर राशि का अन्त होने लगा। आमो के पेडो मे मञ्जरी निकलने लगी। लाल, नीले, पीले, तथा सफेद रंग के सुन्दर फूल खिल गये। माघ मास वसन्त ऋतु को जन्म देता है (अर्थात् माघ मे वसन्त के दृश्य प्रकट होने लगते हैं)॥१२॥

पृष्ठ ३७—खेत पके सब आस. . . .

शब्दार्थ—फाग=फाल्गुन के महीने मे मनाया जाने वाला उत्सव।

भावार्थः—इस (फाल्गुन) मे खेत पक गए मानो परमात्मा ने उन्नति की आँख खोल दी हो, इस से भरपूर अन्न मिल गया और लोगो के दिल मे होलीका आनन्द हो जाता है। क्योकि प्राचीन समय मे होली के त्योहार का अभिप्राय यही होता था कि श्वेत अन्न अच्छे पक जाएँ तो उस की खुशी और परमात्मा का धन्यवाद देने के उपलक्ष्य मे यह मनाया जाता था और इस दिन खूब रङ्ग आदि डाले जाते थे, नाटकादि भी खेले, जाते थे आज किसी न-किसी रूप मे यह त्योहार मनाया ही जाता है।

विधु से इन का शब्द ....

शब्दार्थ—विधु=चन्द्रमा। लौंद=अधिकमास १२वाँ महीना यह ढाई साल के बाद पड़ता है।

भावार्थः—इन की आवाज़ परमात्मा से इतनी बड़ाई (प्रशंसा) लेती है और यह मास रही सही कमी को पूरा कर देता है और उस का मान तिगुना हो जाता है। इसी से तो इस का नाम भी लौंद रखा गया है॥१४॥

[illegible]

शब्दार्थ—[illegible]=होश में आने पर । [illegible]=[illegible] गए ।

भावार्थ—तुमने (इतनी आयु तक) भगवान में ध्यान नहीं दिया अब मन के सचेत होने पर भी क्या करोगे । हे 'शंकर' तुम्हारे ५२ वर्ष यों ही व्यर्थ में व्यतीत होगए । तुम अपने पांवों पर खड़े भी नहीं । हाय ! खेद है कि इस अखिल काल के चक्र के साथ साथ जीवन गुजरा जाता है ॥-१४॥

'प्रभु के प्यारे'

जिस अविनाशी से डरते हैं

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश । उत=तेज । पावक=अग्नि । युगलवेग=दो प्रकार के वेग, सर्दी और गर्मी ।

भावार्थ—जिस अविनाशी (नाश रहित) भगवान से सूर्य प्रेत चेतन तथा अचेतन सभी डरते हैं । जिनके भय से आकाश (बादल होने पर) गर्जता है, वायु भी तेज तथा धीमी चाल से बहती है । अग्नि जलती है, पानी बरसता है और पृथ्वी सर्दी और गर्मी दोनों प्रकार के वेगों को धारण करती है । अथवा इन भौतिक पदार्थों (जल, अग्नि) के वेग को सहती है ॥

पृष्ठ ३८—जिस का दण्ड डरो दिशि चारे . ..

शब्दार्थ—ऋतु चक्र=वसन्तादि ६ ऋतुओं का चक्र । भानु=सूर्य । शशि=चन्द्रमा । प्रकृति=स्वभावशक्ति । विवेक वारिधि=विचार के समुद्र ।

भावार्थ—दसो दिशाओं मे जिस का दण्ड चलता है जिस से काल भी डरता है, जो ऋतुओं का चक्र चलाता है जिसके आदेशानुसार बादल बरसता है, बिजली चमकती है सूर्य तपता है, चांद और तारे चमकते हैं। जिस का क्रोध मन जैसी चंचल वस्तु) को भी डराता है। जो सम्पूर्ण प्रकृति को नाच नचाता है। जन्म मरण से सताए हुए जीव प्राणी) अपने कर्मो का फल भोग रहे हैं। जो लोग (उस परमात्मा से) डरते है और (अपने हृदय मे उसका) मान रखते हैं तथा (उस से कहे धर्म पर चलते हैं और शुभ काम करते हैं या सर्वदा निष्काम कर्म करते हैं ऐसे ही ज्ञानी और सौभाग्यशाली मनुष्य उस परमात्मा के प्रिय बनते हैं।

भव सागर मे तैर रहे हैं.. ...

शब्दार्थ—उज्ज्वल=शानदार। पोत=जहाज। कपोती= कबूतरी। मादा=स्त्री, कबूतरी। नर=पुरुष, कबूतर। वधिक = शिकारी। ऐंठ=घमण्ड आकड।

भावार्थ:—जिन के उज्ज्वल पवित्र) जीवन रूपी जहाज ससार-रूपी समुद्र मे तैर रहे हैं। (इस प्रकार के) दो श्रेष्ठ कबू-तरी और कबूतर (किसी एक) सुन्दर जंगल मे रहते थे।

किसी शिकारी ने धोखा कर के उन दोनों मे से मादा (स्त्री, कबूतरी) को पकड लिया पुरुष कबूतर) अपने घर को अकेला और सूना देख कर बहुत दुःखी हो कर रोने लगा।

बोला पानी बरस चुका है ....

भावार्थ—वह (कबूतर) बोला-पानी बरस चुका है बड़ी

भावार्थ:—जिस स्त्री ने पतिव्रत धर्म को सबसे बडा धर्म मान लिया है उस निष्पाप स्त्री से दुराचारिणी स्त्री (बुरी स्त्री) की तरह से बुरे काम कभी हो ही न सकेंगे।

मुझको अपने स्वामी के पैरो की पूजा (सेवा) का पूरा अभिमान है। मैं जब तक उनसे (पतिदेव) से दूर रहूँगी भोजनादि बिलकुल नहीं करूँगी।

भूखा प्यासा काँप रहा है .. . ..

शब्दार्थ:—वधिक=शिकारी । अभागा=बदकिस्मत । मरणासन्न=मरने के करीब पहुँचा हुआ। शरणागत=शरण मे आया हुआ। वनिता=स्त्री। पल्लव=पत्ते।

भावार्थ:—शिकारी भूख और प्यास से मर रहा है और मरने को तैयार है। हे देव (स्वामिन !) कृपा कर के इस को प्रसन्न करो।

(अपनी प्यारी) स्त्री के मीठे बोल सुन कर कबूतर पंख फैला कर उड गया। कहीं से (एक) जलती लकड़ी लाकर उसने सूखे २ पत्ते भी इकट्ठे कर दिये।

तब उस आखेटी ने अपना.........

शब्दार्थ:—आखेटी=आखेट (शिकार करने वाला, शिकारी) दारुण=भयङ्कर। विनीत=नम्र, सरल। आतिथ्य= अतिथि सत्कार। महमान नवाज़ी, आमिप=माँस।

भावार्थ—तब उस शिकारी ने अपनी ठण्ड दूर कर ली, फिर वह कबूतर कुछ अपनी निन्दा करता हुआ नम्रता से वमेचन बोला।

ध्रुव=स्थिर अटल। धरें=धारण करें। तरें=तर जाएँ। फेर=बदल दो। सविता=सूर्य।

भावार्थ—द्विज लोग वेद पढ़ें, उत्तम विचारों की वृद्धि हो। सब लोग बल पाकर ऊपर चढ़ें (अर्थात् उन्नति करें) किसी से वैर न करें, सरल मार्ग को पकड़े (कुटिलता न करे) और सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना कुटुम्ब समझे। अटल धर्म का पालन करे, दूसरों के दुख को दूर करे और शरीर छोड़ने पर संसार समुद्र से तर जाएँ। हे पिता सूर्य भगवान्! हमारे (दुःसमय) दिनों का परिवर्तन कर दो और शंकर कवि को कविता प्रदान करो (कवि बना दो)॥

विदुषी उपजैं क्षमता न तजैं ..

शब्दार्थ—विदुषी=शिक्षित स्त्रियाँ। क्षमता=सहनशीलता। सुकृती=धर्मात्मा। वर=पति। सधवा=पति युक्त स्त्रियाँ। उबरैं=उद्धार हो। सकलंक=दूषित, बदनाम। दुहिता=लड़कियां, कुटनी=स्त्रियों को परपुरुष से दूषित सम्बन्ध जुड़ाने वाली जो कि भोली भाली लड़कियों या तरुणियों को बहकाती है, स्त्रियों की दलाल। टीकैं=ठहरें। कुलबोर=कुल को डुबाने वाले। दर=दरवाजा, स्थान।

भावार्थ—पढ़ी लिखी स्त्रियां पैदा हों, सहन शक्ति को न छोड़ें। व्रत धारण कर के धार्मिक पति को पावें। पति सहित स्त्रियाँ सुधर जाय विधवाओं का उद्धार हो और वे किसी भी वंश को कलंकी न बना वें। लड़कियां न बेची जाएँ। (स्त्रियों के धर्म बिगाड़ने वाली) कुटनियां न रहें, कुल को डुबाने वालो

(कुलयानको) का अधिकार हो और वे ठिकाने के लिये भी तरसते रहें। हे पिता सूर्य भगवान् ! हम को वरदान दो। हमारे दिनों को फेर दो और 'शंकर' को कविता बनाने में निपुण बना दो।

नृप नीति जागे न अनीति ठगो . ..

शब्दार्थ—प्रजावर=प्रजा रखने वाले, राजा लोग। खर्व= छोटे, नीच। लवें=विनीत हों। भट=योद्धा। संगर=युद्ध। सुरभी=गाय। उपटें=धमकी दे।

भावार्थ—राज नीति जाग जाय, अन्याय (लोगों को) न ठगावे। राजाओं पर (मिथ्या) भ्रम रूपी भूत सवार न हो। झगड़े न हों, दुष्ट और नीच विनीत बनें, योद्धा लोग मदमस्त हो कर (विना कारण) युद्ध न करें। गौएँ न कटें, अन्न की कमी न हो, सुखों का उपभोग डट कर हो और (लोग) भय को ही धमकाएँ (निर्भय हों)। हे पिता............... ..।

महिमा उमडे लघुता न लडे.....

शब्दार्थ—लघुता=तुच्छता। चराचर=जङ्गम तथा स्थावर। सटके=भाग जाय। मुदिता=आनन्द। मटके=नाचे। कमला= लक्ष्मी। कर=हाथ।

भावार्थ—प्रभाव बढ़े, तुच्छता का संग्राम (फैलाव) हो, जंगम तथा स्थावर को मूर्खता न घेरे। धोखे बाजी हट जाय, आनन्द नाचे (फैल) जाय बुद्धि आदर को न छोड़े (बुद्धिमान का आदर हो)। शुभ कर्मों की निर्मल कला विकसित हो

श्रीधर-पाठक

जीवन-परिचय

पाठक जी का जन्म माघ कृष्णा चतुर्दशी को सं० १६१६ आगरा जिला के जोन्धरी ग्राम में हुआ था। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। इन के पिता का नाम पं० लीलाधर पाठक था। १६ वर्ष की अवस्था में ही पाठक जी संस्कृत भाषा धारा-प्रवाह से बोलते थे। अंगरेजी के भी आप एक कुशल लेखक थे। आप 'सुपरिन्टेण्डेण्ट' के पद पर ३००) रु० मासिक वेतन पाते थे॥

पाठक जी प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में बड़े सिद्ध कवि थे। खड़ी बोली और ब्रज भाषा दोनों पर आप का अधिकार था। आप मिलनसार और काफी सहृदय व्यक्ति थे।

आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ५वें अधिवेशन के सभापति भी रह चुके हैं। आप ने लगभग १५ काव्य लिखे हैं।

संवत १९८२ वि० भाद्रपद में आप परलोक वासी हुए।

नट-नागर

पृष्ठ ४३—नट नागर हैं न कहीं अटके.... ......

शब्दार्थ—नट=नाचने वाला मदारी। नागर=चतुर। नट-नागर=भगवान, जो कि संसार रूपी खेल खेलने में बहुत चतुर हैं। अधिवासी=बसने वाले। घट=शरीर, हृदय, या घड़ा।

भावार्थ—(संसार की रचना में) परम प्रवीण परमात्मा कहीं नहीं रुकते अर्थात् सर्वत्र ही इनकी गति है। यद्यपि वे सबों के हृदय (शरीर) में रहते हैं तो भी सदा सब से अलग रहते हैं। चतुर नट भी घड़े से खेलते समय उस में रहता हुआ

भी मन से अलग रहता है ।

वे प्रेम प्रवाह में बहते...

भावार्थ—वह नटनागर बिना किसी रुकावट के (स्वच्छन्दरूप से) प्रेम के प्रवाह में बहते हैं और कहीं नहीं अटकते । जहाँ पर सत्य के लिये सिर कट कर गिर जाता है और जहाँ कृत्य (उचित कर्म, धर्म) पर तेज़ तलवार टूट पड़ती है । वहाँ वह अपने सैनिक (भक्त) के सेवक बन जाते हैं और कहीं पर भी नहीं रुकते ।

अहिमुण्ड पै नाचि मटके ... ...

शब्दार्थ—अहिमुण्ड=साँप का सिर (फण)। मटके=शोभा पाते हैं। गज सुण्ड=हाथी की सूँड। अरि=शत्रु।

भावार्थ—जिन्होंने साँप (कालियनाग) की फण पर चढ़ कर खूब नाच किया और जो हाथी (मगर से व्यथित गजेन्द्र अथवा गजासुर) की सूँड पर जाकर खड़े हो गए वे नारायण अब भी संकट के शत्रु हैं अर्थात् संकट मिटाने वाले हैं। वह नटनागर कहीं नहीं रुकते। (चतुर नट भी कभी साँप के सिर पर चढ़कर और कभी हाथी की सूण्ड पर चढ़ कर खेल करता है)।

पृष्ठ ४४–घर पावे कभी जो कहीं टटके..... .. ...

शब्दार्थ—टटके=तुरन्त। मटके=घड़े, मटकी, शरीर।

भावार्थ—जब कभी वह नटनागर प्रेमरूपी मक्खन के बहुत से घड़ों (शरीरों) को पाते हैं तो कभी कभी वहीं पर अड़ जाते हैं (अन्यथा) वह नट नागर कहीं पर भी नहीं अड़ते (उनकी सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। (जो भक्त उन को प्रेम से भजते हैं तो उन के पास भगवान स्वयं प्रकट होकर दर्शन देते हैं)।

प्रकृति-सौन्दर्य

के यह जादूभरी.... ....

शब्दार्थ—कै = क्या । विश्व = जगत । शैल = पर्वत । पुरुष = आत्मा । प्रकृति = सृष्टि । किधौं = अथवा । प्रेम केलि रस रैलि-करन = प्रेम की क्रीड़ा करने के लिये ।

भावार्थ— कवि काश्मीर की शोभा वर्णन करते हुए कहते हैं कि- क्या यह (काश्मीर) संसार की रचना करने वाले मदारी की जादू से भरी हुई थैली है जो खेल करते समय खुल पड़ने से हिमालय पर्वत के शिखर पर फैलगई है (अर्थात् जिस प्रकार मदारी की जादू की थैली में विचित्र तथा मन को चकित करने वाले तमाशे होते हैं इसी तरह काश्मीर के दृश्य भी मन को विस्मित करते हैं)

अथवा जब पुरुष (नायक) तथा प्रकृति (नायिका) को युवावस्था का रस (जोश) चढ़ आया तब उन्होंने प्रेम—क्रीड़ा का रस लेने के लिये यह (काश्मीर) रंगमहल के रूप में बनाया है ? (अर्थात् विधाता ने यहाँ विचित्र दृश्यों की सृष्टि की है) ।

खिली प्रकृति-पटरानी

शब्दार्थ—प्रकृति पटरानी= सृष्टि रूपी महारानी । सिंगार पिटारी = सिंगार दानी ।

भावार्थ—यह (काश्मीर) प्रकृति महारानी के महलों की फुलवारी खिली है या उस प्रकृति—रूपी महारानी की सिंगार करने की पिटारी खोल कर रखी हुई है (जिस प्रकार शृंगार करने की वस्तुएं स्त्री की शोभा बढ़ाती हैं इसी तरह यहां की भिन्न-भिन्न प्राकृतिक वस्तुएँ प्रकृति की शोभा को बढ़ा रही हैं) ।

यहाँ प्रकृति एकान्त में बैठ कर अपना रूप सँवारती है। क्षण-क्षण मे क्षणिक (तुरन्त ही बदल जाने वाली) शोभा धारण करती है (पहाड़ों पर बादल और धूप के शीघ्र शीघ्र आने से क्षण क्षण मे नई शोभा प्रकट होती है ।

विमल-अम्बु-सर-मुकुरन म... ... ...

शब्दार्थ—विमल = निर्मल । अम्बु = जल । मुकुरन = दर्पण । छवि = शोभा । मोहि = मोहित हो कर । सुरकानन = देवताओं का वन । अमरन = देवताओं का । ओक = स्थान । पुरन्दर = इन्द्र ।

भावार्थ—यहा पर प्रकृति निर्मल जल वाले झीलो-रूपी दर्पणों मे अपने मुँह का प्रतिबिम्ब (परछाई) देखती है (यहा के झील अत्यन्त स्वच्छ हैं जिन मे दर्पण की तरह वन के निकटस्थ वस्तुओं के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं) और अपनी शोभा पर आप ही मोहित हो कर अपने तन और मन को न्योछावर करती है। यह काश्मीर ही तो वस्तुतः देवताओ का स्थान (स्वर्ग) है और सुन्दर नन्दनवन भी यही है । देवता लोग इसी काश्मीर मे ही रहते हैं और इन्द्र भी यहीं कहीं पर निवास करता है ।

स्मरणीय भाव

पृष्ठ ४५—वन्दनीय वह देश ....

शब्दार्थ—वन्दनीय = प्रणाम करने के योग्य। निज अभिमानी = आत्मगौरव रखने वाले । परता = शत्रुता। पराई-प्रभुता = दूसरों का स्वामित्व (शासन) । अभिमानी = मानने वाले ।

भावार्थ—वह देश नमस्कार करने (पूजने) के योग्य है जहा के रहने वाले आत्म-गौरव को धारण करने वाले, आपस मे बन्धुओं की तरह व्यवहार करने वाले तथा शत्रु भाव से अनभिज्ञ (शत्रुता न जानने वाले) हो । वह देश तो निन्दा (तिरस्कार) करने योग्य है जहाँ के निवासी अपने आप को न जानते हों (महत्व न समझते हो) सब तरह से पराधीन हों और

अपने देशका स्वामी बनाना (उनका शासन) स्वीकार क
हों। (अर्थात् विदेशी राजा पर अभिमान करने वाले हों

कबहुं न तहा पधारि ग्राम्य जन······

शब्दार्थ—विरहा = विरह गान। श्रवण = कान। उदधि
समुद्र।

भावार्थ—अब ग्रामवासी कभी भी वहाँ आकर पैर न
रखेंगे। मधुर भूल में पड़ कर हमेशा अपनी चिन्ताओं को
भूलेंगे। किसान भी अब वहां आकर खबरें न सुनायेंगे और न
नाई की बातें सब के मन को बहलायेंगी। लक्कड़हारे का विर
गान भी वहां अब कभी सुनाई न पड़ेगा। कानों को आनन्
देने वाली तानों का समुद्र यहाँ कभी भी न उमड़ेगा
लोहार अपना माथा (माथे का पसीना) पोंछ कर काम के लिये व
नहीं रुकेगा और न ही भारी बोझ को ढीला कर के बातें सुनने
लिये ठहरेगा। अब वहां घर का मालिक झाग (दूध) से भरे प्याले
को स्वयं ही सब की ओर फिराता (देता) हुआ दिखाई न पड़ेगा
धनी लोग दीनों को देख कर इस छोटी-सी संपत्ति की भले ह
हँसी करें और घमण्डी इसे तुच्छ क्यों न मानें। परन्तु मुझे
तो यह गाँव की जिन्दगी अत्यन्त प्रिय लगती है और मन को
बहुत पसन्द आती है। क्योंकि यहां सारी बनावटों से रहित
एक प्राकृतिक सुन्दरता है।

पृष्ठ ५६—जहां मनुजों को मनुज अधिकार······

शब्दार्थ—निर्धारित = निश्चित। उपचार = बर्ताव। आप्त = प्राप्त। कलिमलमूलक = कलियुग के मल की जड़। उपवेश = रहने का स्थान। नूतन = नये। अघ = पाप। निवेश = स्थान।

भावार्थ—जिस देश मे मनुष्यों को मनुष्य के योग्य हक प्राप्त नहीं। प्रत्येक मनुष्य मे सरलता, प्रेम तथा सुजनता का व्यवहार विद्यमान नहीं। जहाँ पुरुष और स्त्रियों को यथोचित सेवा (अधिकार) प्राप्त नहीं जहा कलियुग की बुराइयो की जड-स्वरूप झगड़े कभी समाप्त ही नहीं होते। वह देश मनुष्यों का नहीं बलिक प्रेतों (भूतो) के रहने का स्थान है। नित्य नये नये पापमय कार्यों का वह स्थान पृथ्वी पर नरक स्थान है।

———o———
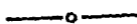
साधारण अति रहन सहन ·····

शब्दार्थ—मनुजवंश = मनुष्य जाति। सत्कर्मपरायण = अच्छे कर्मों मे लगा हुआ। गाथा = गीति, कहानी। निकाई = सुंदरता।

भावार्थ—उस का रहन-सहन अति साधारण था उस की मधुर वाणी हृदय को हरने वाली थी। उस की मीठी मुस्कराहट मन को हरने वाली थी वह मनुष्य जाति का प्रकाशित करने वाला सभ्य, सज्जन, अच्छे कामों मे तत्पर, सौम्य, अच्छे स्वभाव वाला, चतुर, शुद्ध चरित्र वाला, उदार, शुभ प्रकृति वाला विद्या और बुद्धि का खजाना था। मै उस प्राणों के समान प्यारे के गुणो का गीत कहाँ तक गाऊँ क्योंकि वह गाते गाते समाप्त ही नहीं होते, चाहे [illegible] ने ही समाप्त हो जाऊँ। संसार

भावार्थ—हे मेघ ! तुम किन देशों मे छाये रहे हो, वर्षा तो बीत गई। कहां घूमते रहे हो, यह नई रीति कैसी ? सावन का सुंदर महीना, जो वर्षा ऋतु की शोभा था, वह तुम्हारे आने के बगैर भयानक बना रहा। तुम्हारे बिना तो रखडी (रक्षाबन्धन) का उत्सव भी खाली ही गुज़रा (अच्छी तरह नहीं मनाया गया) और बिल्कुल उदादीनता छाई रही। दुःख दिन प्रतिदिन दुगने बढ गए चारों तरफ भय छाया रहा।

तालाब और नदियाँ सूख गई, आकाश धूल से भर कर मैला होगया। पृथ्वी (घबरा कर) व्याकुल हो गई थी और सारे पक्षी तथा हिरण आदि जीव प्यासे मरते रहे। वर्षा काल के वह साज कहाँ सजा रखे थे और वह घनघोर-घटाएँ कहाँ कर रहे थे। बादलों, के झुण्ड कहाँ छाये थे, जिन को देख कर मोर नाचते हैं। गर्मी तीव्र तथा भयानक थी। गर्मी बड़े ज़ोर से पड़ती रही। दसों दिशाओ को जलाती रही और वह बहुत भयानक, तेज़ तथा कठोर प्रतीत होती थी।

यह दया रहित ग्रीष्म सदा तंग करता रहा। और पृथ्वी के लोगों को तपाता रहा, रुलाता रहा तथा दुखी बनाता रहा, जिस से सम्पूर्ण संसार दु:खी रहा। तुम्हारे बिना कौन उन (दुखित लोगों) का उद्धार करेगा, सम्मान करेगा। हे जगत् के जीवन ! और प्राण-रूपी मेघ! कौन उन के दुखों को हरण कर के उन को धैर्य बँधायेगा। (अथवा हे धीर ! कौन उनका उद्धार करेगा)। हे मेघ ! तुम जल के देने वाले, और जगत के जीवन हो (इसी से) तुम्हारा नाम भी जीवन (प्राण

बेमान ! ऐ अनेक प्रकार की रचना करने वाले तथा निधान (कोष भूत) मेघ ! तुम प्रत्येक वन को कीड़े और पक्षियों से तथा घरों को स्त्रियों के गाने से और अनेक रंग वाले पदार्थों से पूर्ण करो। तुम बावडी, नदी, तालाब बाग, वाटिका, मार्ग, गली, घर, तथा सहनों को (वर्षा से) भर दो और खूब कीचड़ बना दो। तुम हमें फिर से कजरी और मलार गीतों का शब्द सुनवाओ। बार बार पीव-पीव रटने वाले पपीहे की फिर से प्यास को शान्त करो (क्योंकि पपीहे को केवल वर्षा के समय ही जल मिलता है)। किसानों को कृतार्थ (सफल) कर के वर्ष को सरस बना दो। सस्य, धान्य तथा घास फूसादि को सींच कर फिर अपने स्थान को वापिस जाओ। इसी प्रकार समय समय पर तुम आजाया करो और फिर वापिस चले जाया करो। मन मे स्वाभाविक (सरल) नीति का मार्ग ग्रहण कर के तुम स्वाभाविक सौभाग्य को बढाओ। हे प्रेम में प्रसिद्ध मेघ! हम प्रार्थना करते हैं कि तुम प्रसिद्ध प्रेम के रस में डूब जाओ और हमेशा सरस अनुराग करो, प्रेम करो।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

जीवन—परिचय

अयोध्यासिंह उपाध्याय जी का जन्म आज़मगढ़ निवासी पं० भोलासिंह जी उपाध्याय के यहां सं० १६२२ में हुआ था। आप गद्य तथा पद्य दोनो की रचना करने में कमाल करते हैं और सरल से सरल तथा मुश्किल से मुश्किल रचना कर सकते हैं।

बावा सुमेरसिंह साधु के संग से ही आपने कविता का अभ्यास किया। आप की भाषा मुहावरेदार होती है। आप देहली मे होने वाले अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य समेलन के प्रधान भी बन चुके हैं। आजकल आप हिंदू-विश्वविद्यालय काशी मे अध्यापक हैं और समय समय पर हिंदी की सेवा में हाथ बँटाते हुए हिंदी प्रेमियो को अपनी सुमधुर रचनाओं से कृतार्थ किया करते हैं।

—०—
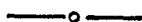
प्रेम—पुकार

पृष्ठ ५१—प्रभो क्या फिर लोगे अवतार······

शब्दार्थ—भयभंजन = डर को दूर करने वाले। व्यथित = पीड़ित। मथित = क्षोभ युक्त। मानस = मन।

भावार्थ—हे प्रभो, क्या तुम फिर अवतार लोगे। हे भय को दूर करने वाले! क्या भारतभूमि का भार फिर से दूर करोगे। क्या हमारे दु:ख भरे और क्षुब्ध चित्त सुख को प्राप्त करके फिर से सुखी होगे। क्या (सुख देने वाली) जल की धारा को बरसा हमारे चित्त को सरसाओगे ॥१॥

अपने सुंदर कण्ठ से मीठा तथा बहुत ही लोकोत्तर (अद्
गीत गाओ ॥५॥

पृष्ठ ५२—एक बार फिर प्रभो पधारो……

शब्दार्थ—पूत = पवित्र । अपूत = बुरा या अपवित्र । क
निन्दित लड़का । सुधा = अमृत ।

भावार्थ—हे प्रभो ! (भारत में) एक बार फिर से अ
और आकर अपवित्र को पवित्र करो, जो बहुत ही नि
दुराचारी लड़का है उस को पार कर दो । अमृत-भरे (
हितकारी, सुख देने वाले तथा मन को प्रसन्न करने वाले व
को बोलो । हमारे इस व्यर्थ होते जीवन को सार्थक बना
निष्फल जन्म का सुधार कर दो ।

प्यारे ! इतने पड़ो न रूखे……

शब्दार्थ-जलद = मेघ । रूखे = रुष्ट । कलपा करे =
होवे । कृपा कोर = कृपा दृष्टि ।

भावार्थ—हे प्रिय, तुम इतने रुष्ट न होओ । वृक्षों के
जाने पर बादल पानी बरसा कर क्या करेंगे ? हे जग
प्राणाधार ! हम तो हर तरह से अब सूख (खाली हो) गये
हे कृपानिधे ! आप की कृपा दृष्टि के भूखे हम कब तक
होते रहें ॥६॥

प्यारे आते हो तो आओ……

शब्दार्थ-वदनमयंक = मुख रूपी चाँद । तिमिर = अन्धका
परम चारु = अत्यन्त मनोहर । छितितल = पृथ्वी । श
श्यामला = धानों से हरी भरी ।

भावार्थ—हे प्रिय, अगर आप को आना है तो आओ। अपने मुख रूपी चन्द्रमा को दिखा कर भारतवर्ष के अंधेरे को दूर करो। अत्यन्त सुंदर गुणों से युक्त चाँदनी पृथ्वी पर फैला दो। इस भारत-भूमि को धानों से हरी-भरी, उत्तम जल और फल फूलों से युक्त बनाओ। शक्ति रूपी संजीवनी (औषधी) का संचार करके और जिन्दगी भर कर इसे जीवित करो। हे स्वामी! हे प्रीति तथा हित को करने वाले! तुम परम प्रिय और सरस अमृत की वर्षा करो ॥७॥

शोचविमोचन शोच हरो…

शब्दार्थ—विभुता = स्वामित्व, स्वतन्त्रता। अभिनव = नया। विकलता = व्याकुलता। कालिमा = मैल।

भावार्थ—हे शोक को दूर करने वाले! आप हमारे शोक को दूर करें। हे स्वामी! हे लोक के नेत्र! अब नेत्र खोल कर स्वतन्त्रता का वरण करो। हे जगत् के जीवन! हम को नया जीवन दे कर अच्छे विचारों से भर दो। हे सम्पूर्ण कलाओं से युक्त! हमारी व्याकुलता को हटाओ और मलिनता को दूर करो ॥८॥

घनतनरुचि! यह रुचि है मेरा……

शब्दार्थ—घनतनरुचि = मेघ के समान शरीर की शोभा वाले। सलिल = जल। मुग्ध कर = मोहित करने वाली।

भावार्थ—हे मेघ के समान शरीर की दीप्ति वाले! मेरी यह इच्छा है कि तुम रुचि-पूर्ण जल की वर्षा करो। हे रसमय! दयालुता को सरसाओ, अब देरी मत लगाओ। बार-बार मीठी-मीठी ध्वनि करके मन को मोहित करने वाली फेरी (भ्रमण) किया करो।

हे गतिहीन की गति। मुझ गतिहीन चातक कि आप ही आंत हे तुम ही गति (उद्धार करने वाले) है ॥६॥

व्रज—वर्णन

पृष्ठ ५३—गत हुई अब थी द्विघटी निशा ····

शब्दार्थ—द्विघटी = दो घड़ी। मेदिनी = पृथ्वी। लसी = शोभा पा रही थी। तरु = वृक्ष। वृन्द = समूह। गेह = घर।

भावार्थ—दो घड़ी रात बीत चुकी थी, सारी पृथ्वी अन्धकार से भरी पड़ी थी। अब आकाश मे तारों की माला बड़ी विचित्रता से शोभित हो रही थी ॥ १ ॥

अन्धकार से ढके हुए वृक्ष मनुष्यों के समूह को भी अन्धकारमय पेड़ो के समान दिखा रहे थे (अन्धकार में खड़े हुए मनुष्य भी काले-काले पेड़ जैसे दीख पड़ते थे)। गोकुल के सब घर इस समय अन्धकार से बनाये हुए जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥ २ ॥

इस तमोमय गेह समूह का ···

शब्दार्थ—सुकक्ष = मंज़िल। निधान = कोष। मंजुल = सुन्दर। सदन = घर। सिगरी = सारी। कुलकामिनी = कुलीन स्त्रियाँ।

भावार्थ—अन्धकार से भरे हुए इन मकानों की सभी मंजिलें खूब प्रकाशित थीं। रंग बिरंगे प्रकाश करने वाले दीपक (इन घरों मे फैले हुए) अन्धकार को दूर कर रहे थे ॥ ३ ॥

इन प्रकाशमय सुंदर मंजिलों में उत्तम कुल में उत्पन्न हुई-हुई स्त्रियों अपने घरों के सभी कार्य करके व्रज राज के सुंदर यश को कह रही थीं ॥ ४ ॥

सदन सम्मुख के कछ ज्योति से······

शब्दार्थ—वर = अच्छी। समवेत = मिली हुई। रमणि = स्त्रिया। विरुदावली = गुणों की प्रशंसा।

भावार्थ—सुन्दर प्रकाश से मकानो के सामने वाली जितनी बैठके प्रकाशित हो रही थीं, उनमे पुरुष (भगवान के) उत्तम गुणों के वर्णन करने मे अनुरक्त (संलग्न) हो रहे थे ॥ ५ ॥

स्त्रियों के साथ सुंदर कन्याएँ और पुरुषों के साथ बालको के समुदाय अपने सुन्दर कण्ठ से व्रज भूमि के भूषण (भगवान् कृष्ण) के यश का गान कर रहे थे ॥ ६ ॥

पृष्ठ ५४—सब परोस कहीं समवेत था······

शब्दार्थ-चयन = इकट्ठा करना। कुसुमावलि = फूलों की पंक्ति रसना = जीभ। अलापित = कही जारही।

भावार्थ—यश-रूपी पुष्पों को चुनने के लिये कहीं पर पास पडोस के सब लोग इकट्ठे हुए-हुए थे, तो कहीं पर घरके ही सब लोग सम्मिलित हो गये थे और कहीं पर तो पुरुष तथा स्त्रियां जमा हुई-हुई थीं ॥ ७ ॥

कहीं जिह्वा को रस से परिपूर्ण कर के (रसमय शब्दो मे) भगवान के वर्णनीय गुण कहे जा रहे थे। कहीं पर मीठे राग से भरे हुए स्वर तथा ताल मे सुंदर यश को गाया जा रहा था ॥ ८ ॥

बज रहे मृदु-मंद-मृदग थे······

शब्दार्थ—मृदुमंद = कोमल तथा धीमे (स्वर से)। मृदंग = बाजे। बीनविचित्र = वीणा की विचित्रता। मधुर = शब्द (मधुर

रस) आलय = घर।

भावार्थ—वाजे धीमे तथा मधुर स्वर से वज रहे थे। कभी-कभी तालियों का शब्द हो उठता था। वीणा के विचित्र और रसीले शब्दों से वड़ा भारी मिठास वरस रहा था॥ ९॥

इस समय सभी मकानों से सुंदर शब्दों की लहर निकल रही थी। सारी गलियां मधुर शब्द से पूर्ण थी। गोकुल का सारा गाँव शब्दायमान था॥ १०॥

सुन पड़ी ध्वनि एक इसी घड़ी······

शब्दार्थ—सविराम = यति-विश्राम के सहित। जनैक = एक आदमी। मुकुन्द = श्रीकृष्ण। प्रवास = विरह।

भावार्थ—इसी समय गाँव मे एक अनर्थ पैदा करने वाली आवाज सुनाई पड़ी। जो अव वड़े जोर से वजाये जाते हुए वाजों से ठहर ठहर कर निकलती थी॥ ११॥

पृष्ठ ५५—कर जनैक लिये इस वाद्य को· ·

भावार्थ—एक आदमी हाथ मे इस वाजे को ले कर पहले इसे खूब जोर से वजाता था फिर जोर से भगवान् कृष्ण के विरह के प्रसंग का कथन (गान) करता था॥ १२॥

अमित विक्रम कंस नरेश ने ·

शब्दार्थ—अमित विक्रम = वहुत वल वाले। विलोकन = देखना। समादर = आदर। सुतस्वफल्क = अक्रूर। मधुपुरी = मथुरा। अवधारित = निश्चित।

भावार्थ—प्रतापी राजा कंस ने धनुष-यज्ञ देखने के लिये व्रज के राजा (नन्द) को पुत्र (कृष्ण-वलराम) सहित आदर पूर्वक निमन्त्रित किया है॥ १३॥

इस निमन्त्रण को ले कर आज ही स्वफलक के पुत्र अक्रूर आये हुए हैं और कल प्रातःकाल को ही मथुरा जाने का निश्चय भी हो चुका है ॥ १४ ॥

हरि-गमन

आई वेला हरि गमन की·· ···

शब्दार्थ—वेला = अवसर। खिन्नता = दुख। नलिनपति = सूर्य। पादपों = वृक्षो। सजनक = पिता समेत। कढे = निकले। सद्म = घर। दृगों के = नेत्रों के। वामा = स्त्रियां।

भावार्थ—जब श्री कृष्ण के जाने का अवसर आगया तब सब जगह शोक-सा छा गया। भगवान् सूर्य्य भी कुछ थोड़े से ऊँचे हो कर (अस्त होने को तय्यार हो) वृक्षो की ओट मे छिप गये। अपने बान्धवों को आगे कर के और अक्रूर जी को साथ ले कर के मुरारी (कृष्ण) पिता के साथ अपने घर से निकले ॥ १ ॥

अपने प्रिय पुत्र के पीछे-पीछे अत्यन्त दुखी और शोक से दबी हुई यशोदा भी अनेक स्त्रियों के सग निकली। उस के नेत्रा से आंसू आते थे जिन्हे वह अत्यन्त कठिनता से रोकती थी। वह हृदय मे उठने वाले सैकड़ों संशयो से दुखी हो रही थी ॥ २ ॥

पृष्ठ ५६—द्वारे आया व्रजनृपति को ·····

शब्दार्थ—यात्रा = सवारी। भामिनी = स्त्री।

भावार्थ—व्रज-राजा को सवारी लेकर द्वार पर आया हुआ देख कर तथा फूल के समान अपने लाडले पुत्रों का भोला-भाला-सा चेहरा देख कर खेद तथा दीनता से भरी हुई नन्द की पत्नी

(यशोदा को) देख कर सारे लोग सोच-विचार में पड गए और कांप उठे ॥३॥

कोई कोई तो इतना रोया कि लाख कर के (बड़ी कोशिशों से) आँखों में से आता हुआ पानी उसके रोकने पर भी न रुक सका। कोई दुःख के साथ आहें भरता हुआ पागल ही हो गया। कोई तो कहने लगा कि हे सम्पूर्ण व्रज के जीवन के आश्रय इस प्रकार लोगों को दुःखी बना कर आज कहाँ जा रहे हो ॥ ४ ॥

रोता होता विकल अति ही · ···

शब्दार्थ—विकल = दुखी। आभीर = अहीर, ग्वाला। अवनि = पृथ्वी।

भावार्थ—(इस जनता मे से) रोता हुआ और घबराया हुआ तथा दीनों के समान वचन बोलता हुआ एक बूढा ग्वाला अक्रूर के पास आया और कहने लगा कि आप हम लोगों को कोई ऐसा उपाय बताएँ जिस से मेरे पुत्र आज मुझ से अलग न हो ॥ ५ ॥

मैं बूढा हूं यदि आप मुझ पर कुछ कृपा करना चाहें तो मेरी इतनी प्रार्थना है कि आप श्याम (कृष्ण) को यहां छोड जाएँ। मेरा लाल (कृष्ण) सारे व्रज का प्राण (प्यारा) है अगर आप उसे ले गये तो हम सब कैसे जीएँगे।

रत्नों की है नहिं कुछ कमी······

शब्दार्थ—गज = हाथी। तुरग = घोड़े। निजधन = अपनी वास्तविक सम्पत्ति, पुत्र। धरणि = पृथ्वी। यामिनी = रात। तात = पिता। सुग्तन = उत्तम रत्न। (अथवा देव शरीर वाला)।

भावार्थ— मेरे पास रत्नों की कुछ कमी नहीं यदि आप चाहें

तो रत्नों के ढेर ले लें। सोने चांदी के साथ सारा धन गाडियो मे भर भर कर ले लें। आप गौएँ, हाथी तथा घोडे भी ले लें। परन्तु मैं हाथ जोड़ता हूँ कि आप (मेरी जान) मेरे सुपुत्र को न ले जाएं ॥ ७ ॥

यदि ब्रज भूमि रात्रि के समान प्यारी है, तो आपने अपने पिता सहित सभी ग्वाले तारों के समान हैं, मेरा प्यारा बेटा तो उस ब्रज-भूमि रूपी रात्रि का इकलौता चन्द्र है, यदि वह (हमारी) आंखों से दूर हो जाएगा तो (इस ब्रज भूमि पर) अन्धकार छा जाएगा ॥ ८ ॥

यह मेरा पुत्र ब्रज का सदा प्यारा तथा हृदय का प्रकाश है। यह दीनों की सबसे बडी सम्पत्ति है और बूढों के नेत्रो का तारा (ज्योति) है। यह तरुण स्त्रियों का प्यारा बान्धव है और बालको का बन्धु है। आप हमारे ऐसे उत्तम रत्न (या देव स्वरूप कृष्ण) को कहां ले जा रहे हैं ॥ ६ ॥

गोपिका-विरह

कालिन्दी के पुलिन पर थी…… ……

शब्दार्थ—कालिन्दी = यमुना। पुलिन = तट। कुञ्जातिरम्या = अत्यन्त रमणीय लतागृह। सुद्रुम = सुन्दर वृक्ष। अंको – गोद में। पुष्पभारावनम्रा = फूलों के बोझ से झुकी हुई।

भावार्थ—यमुना के तट पर एक सुन्दर लता-गृह था। उस के आस-पास छोटे-छोटे मोहने वाले उत्तम वृक्ष विद्यमान थे। इन वृक्षों की गोद में लिपटी हुई शोभा युक्त तथा फूलो के भार से

झुकी हुई एक विशाल लता (शोभा पा रही) थी ॥ १ ॥

बैठे ऊधो मुदित चित्त से·· ···

सरि=नदी, यमुना । तपन=सूर्य । पल्लव=पत्तियां ।

भावार्थ—एक दिन उद्धव इसी (लता कुंज) में प्रसन्न मन बैठे हुए थे । सामने नदी का अनेक खेल करता हुआ जल भी शोभित हो रहा था । सूर्य की किरणें धीरे-धीरे चारों दिशाओं में फैल रही थीं । पवन भी पत्तों से अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करता था ॥ २ ॥

आई वामा कतिपय इसी······

शब्दार्थ—कूलार्कजा=जमुना का तट । आशाओं=दिशाओं । नूपुरो=पायजेवों । सुवदनि=अच्छे मुख वाली । उदक=जल । उन्मना=उत्कण्ठित । जलद तन=मेघ के समान शरीर वाला, कृष्ण ।

भावार्थ—नूपुरों से सब दिशाओं को शब्दायमान करती इसी समय कुछ स्त्रियाँ यमुना के तट पर आईं । इन सुन्दर स्त्रियों के साथ भोली भाली कई सुन्दर लड़कियाँ भी थीं ॥ ३ ॥

पृष्ठ ५८—नीला प्यारा उदक सरि का······

भावार्थ—एक साँवली स्त्री नदी के नीले नीले और प्यारे जल को देख कर अत्यन्त दुखी होकर दूसरी ग्वालिन से कहने लगी—मुझे यमुना का किनारा उत्कण्ठित बना रहा है और प्रेम घनश्याम (कृष्ण) की मूर्त्ति की याद आ रही है ॥ ४ ॥

श्यामा बातें श्रवण कर के······

शब्दार्थ—श्रवण करना=सुनना । अरुण=लाल । वारिधार= आँसुओं की धारा । मर्मज्ञ=हृदय की गुप्त बात को जानने वाली ।

शब्दार्थ—उस स्त्री की बातें सुन कर एक ललना रो पड़ी। रोते-रोते उस के दोनों नेत्र लाल हो गये। ज्यों-ज्यों वह शर्म से आँसुओं को रोकती थी त्यों-त्यों उस की आखों में और भी अधिक आंसू भर आते थे ॥ ५ ॥

ऐसा रोते निरख उस को……

भावार्थ—इस प्रकार उस को रोती हुई देख कर हृदय के रहस्य को जानने वाली एक (अनुभवी) स्त्री कहने लगी—हे बहिन ! यदि तू ऐसे ही रोएगी तो काम कैसे चलेगा। तुम्हारी ये दो आँखें किस तरह प्रकाश युक्त रहेंगी और तू उस सुन्दर सॉवली मूर्ति (कृष्ण) को कैसे देख सकेगी ॥ ६ ॥

मर्मज्ञा का कथन सुन के—

शब्दार्थ—विरह दव = वियोग की आग। दग्धिता = जली हुई। औषधी = दवाई। वाष्पो = आँसुओं। नभ = आकाश। समाच्छन्न = ढकाहुआ। निर्द्धूता = नष्ट। पर्जन्य = मेघ।

भावार्थ—हृदय की बातों को जानने वाली (चतुर स्त्री) का कहना सुन कर के एक सुन्दर नारी ने कहा—हे सखी ! तुम दुखी बाला को रोने दो क्योंकि जो स्त्रियां विरह रूपी आग से जली हुई हैं उन को शांत करने के लिये तो नेत्रों का जल ही एक-मात्र औषधी है ॥ ८ ॥

पृष्ठ ५६—वाष्पों द्वारा बहु-विध-दुःखों……

भावार्थ—बहुत प्रकार के दुखों से बढ़ी हुई पीड़ा के द्वारा पैदा हुए वाष्प (भाप तथा आँसू) से जो युवतियों का हृदय रूपी आकाश ढक जाता है तो उस की मलिनता (धुँधलापन तथा मानसिक पीड़ा) तब तक दूर

नहीं होती जब तक कि वह मेघ तथा युवतियाँ आँखों से जल को न बरसावें (अर्थात् मेघ के बरसने पर आकाश जिस प्रकार साफ होता है उसी प्रकार रोने पर दुःखी के हृदय का ताप भी कम हो जाता है)

प्यारी बातें श्रवण जिनने......

भावार्थ—जिन्होंने कभी भी (किसी ही दिन) कृष्ण की प्रिय बातें सुनी थीं तथा जिन्हों ने कभी उस का सुन्दर और प्यारा मुँह देखा था वह भी श्याम की याद आने पर दुखी होती है तो फिर वह स्त्री क्यों न रोये जिस के जीवन का एक मात्र आधार वही है ॥ १० ॥

——o——

भक्ति

विश्वात्मा जो परम प्रभु है......

शब्दार्थ—विश्वात्मा = ससार की आत्मा। सरि = नदी। सिक्ता = सींचीहुई।

भावार्थ—जो संसार की आत्मा और बड़े स्वामी परमात्मा हैं यह सब अनेक प्रकार के जीव, नदी, पर्वत, वृक्ष तथा लताएँ हैं उसी का ही स्वरूप है। उस परमात्मा की पूजा करना तथा प्रयत्न और आदर के साथ उनकी सेवा करना इस प्रकार श्रद्धा से सींची हुई उस परमेश्वर की भक्ति सब से उत्तम है।

जी से बातें सकल सुनना ..

शब्दार्थ—उत्पीड़ितों = कष्ट में पड़े हुए पुरुषों की। लोक-उन्नायको = लोगों की उन्नति करने वालो की। अभिधा = नाम वाली। उन्मेय = विकास।

भावार्थ—दुखी तथा कष्ट में पड़े हुए व्यक्तियों की बातें मन लगा कर सुनना दुखी जन बीमार, पीड़ित तथा मनुष्यों को उन्नत करने वाले (नेता आदि) पुरुषों की भी बातें सुनना, अच्छे शास्त्रों का तथा सज्जनों, साधुओं (उत्तम पुरुषों) के वचनों को श्रवण करना, इसी भक्ति को सज्जन लोग "श्रवण" नाम से मानते हैं ॥ २ ॥

सोये जागें तम-पतित को • •

भावार्थ—जिस से सोये हुये (अज्ञान में पड़े हुए जाग जाएँ) अन्धकार में (अज्ञान में) पड़े हुए पुरुषों के नेत्रों में प्रकाश आता है (अर्थात् जिस से मोह-निद्रा दूर होती है) जिस से भूले हुए आदमी उत्तम मार्ग पर आ जाते हैं, ज्ञान का विकास हो जाता है जिस से भगवान् के स्वर्गीय और लोकोत्तर गुणों को गाया जाता है वही भगवान की प्यारी भक्ति 'कीर्तन' नाम से कही जाती है ॥ ३ ॥

पृष्ठ ६०—विद्वानों के स्व गुरु-जन''

शब्दार्थ—सुचरित = शुद्ध चरित्र वाले। तेजीयसों = तेजस्वियों। आत्मोत्सर्गी = आत्म बलिदान करने वाले। विबुध = विद्वान्। देवसद्विग्रहों = देवताओं की अच्छी मूर्तियां।

भावार्थ—जिस में विद्वान, अपने गुरु-जन (दीक्षा गुरु और माता पिता) देश सेवक, ज्ञानी, दान-शील, उत्तम चरित्र वाले गुणियों में प्रधान, तेजस्वी, आत्म बलिदान करने वाले, पण्डित और देवताओं की मूर्तियों (अथवा देवताओं के समान पवित्र शरीर वाले, महापुरुषों) के सामने झुका जाता है वह ईश्वरकी 'वन्दना' नाम वाली भक्ति है ॥१४॥

जो बातें हैं भव-हित-करि • • • • •

शब्दार्थ—भव=संसार। उत्सर्ग=न्यछावर। संज्ञका=नाम वाली। उद्वेगों=दुःखितों की। सुरति=प्रेमभाव। त्राण=रक्षा। पर=अन्य। भावुकों=श्रद्धावानों।

भावार्थ—जो जो बातें संसार का हित तथा समस्त जीवों का उपकार करने वाली हैं और जो नीच और पतित जातियों को उठाने वाली हैं उन सब के (ग्रहण करने के) लिये हाथ बांध कर हमेशा तय्यार रहना, बस यही उस विश्वेश्वर की संसार में सुख देने वाली 'दासता' नाम वाली भक्ति है ॥५॥

कंगालों की विवश विधवा·····

भावार्थ—जिस मे गरीबों, लाचार विधवाओ, अनाथों तथा दुःखितों के साथ प्रेम तथा उन की रक्षा करने के भाव हों जिस में उत्तम क्रिया और औरों की अनेक प्रकार की पीड़ाओं का चिन्तन किया जाता है, श्रद्धा वालों की उस ऐसी भक्ति को ही 'स्मरण' नाम से पुकारते हैं ॥६॥

कमनीय-कामना

कर दे सरस बसन्त······

शब्दार्थ—मारुत=हवा। आमोदित=आनन्दित। मंजरी=आम का बौर। विकच=फूल हुआ। कुसुम=फूल। चय=समूह। पल्लवित=पैदा हुए पत्रों वाला। निकर=समूह। कुमकुमे=अबीर, गुलाल से भरा हुआ लाख का गोला। कुमक=सहायता। चावों=इच्छाओं, आनन्द। दानवी=राक्षसी।

भावार्थ—वसन्त को सरसाओ, मलयाचल की सुगन्धित वायु चले, कोयल अत्यन्त प्रसन्न हों, बौर आनन्द देने वाला हो।

होश ठिकाने आगई और ताना देती हुई कहने लगी कि तू इतनी अकड़ क्यों करता है जब कि तेरे (मारने के) लिये केवल एक ही तिनका काफी है ॥३॥

सुप्रभात

पृष्ठ ६२—क्या न होगी तमोमयी निशा तिरोहित……

शब्दार्थ—तमोमयी = अन्धेरी । तिरोहित = गायब, नष्ट । नमीचर = राक्षस । असित = काली । ककुभ = दिशा । भैरव = भयानक । रव = शब्द । उषा देवी गात = प्रभात देवी का शरीर । प्रभाकर प्रभुता = सूर्य का प्रकाश ।

भावार्थ—क्या अब अन्धेरी रात्रि न छिपेगी ? क्या राक्षस लोग निस्तेज न होंगे, न मरेंगे ? काली दिशाएँ अब सफेद न न होंगी ? क्या उल्लुओं का भयानक शब्द हमेशा ही होता रहेगा ॥१॥

क्या नई नई तानों से भरा हुआ गाना न होगा ? क्या प्रभात देवी का शरीर गौरव पूर्ण न होगा ? क्या भगवान् भास्कर की प्रभुता (अधिकार, प्रकाश) प्रकट न होगी ? हे स्वामी क्या (अब फिर) प्रकाशमय प्रभात न होगा ? ॥२॥

कुछ उलटी सीधी बातें

जला सब तेल दीया बुझ गया—

शब्दार्थ—उकठा = सूखा ।

भावार्थ—जब तेल जल जाने पर दिया बुझ गया हो तो

भावार्थ—जो अपने (छोटे-से) घर को भी नहीं संभालता वह देश को क्या संभालेगा (भला) जिस से मक्खी ही नहीं उड़ पाती वह पंखा कैसे डुला सकेगा ॥ ६ ॥

मरेंगे या करेंगे काम······

भावार्थ—जिस के हृदय में यह समा गया है कि या तो कर मरूँगा या (अपना) काम पूरा करूँगा, उस के सिर पर बिजली भी क्यों न गिरे लेकिन फिर भी वह अपने स्थान (दृढ निश्चय) से पीछे न हटेगा ॥ ७ ॥

नहीं कठिनाइयों में ···

शब्दार्थ—टूटेगा = चूने लगेगा ।

भावार्थ—मुसीबतों में बहादुरों के समान कायर पुरुष नहीं ठहरते । जैसे सुहागा गर्मी के संयोग में आ कर कांच के समान क्या चूने लगेगा (कांच तो मुलायम है और वह जल्दी ही टूटता है परन्तु सुहागा क्या टूटेगा) इसी तरह वीर पुरुष जो कि पहले से ही दृढ़ चित्त होते हैं । वे दुःखों में नहीं घबराते ॥ ८ ॥

[illegible] रस नहीं ·

शब्दार्थ—पयाल = धान, कोदो आदि के सूखे डण्ठल ।

भावार्थ—भला कोई धान के सूखे हुए डण्ठलों को [illegible] रहेगा उन में तो न रस रहेगा न गाँठ हटेगी [illegible] हटेगी (जिस कार्य में कुछ प्रयोजन न हो उस [illegible] नहीं) ॥९॥

[illegible] ···

शब्दार्थ—[illegible] = दो टूक की हुई । [illegible] = [illegible] की हुई ।

भावार्थ—[illegible] (टूटा [illegible]) [illegible] (टूटी) [illegible] (फिर) [illegible] (सूखी, [illegible]

की हुई) (और फिर) घनाई गई दाल को कोई क्या दलेगा। इस का तात्पर्य यह है कि सिद्ध किये कार्य को फिर से करना निरर्थक है ॥१०॥

भला क्यों छोड़ देगा ....

भावार्थ—जिसको लेने की आदत पडी हुई हो उसे जो चीज मिल सकेगी वह उसे (अवश्य) लेगा। वह कौन कौन सी (चीज) न लेगा अर्थात् जिसे लेने की आदत पड जाती है वह अच्छी बुरी किसी भी चीज के लेने मे हिचकिचाहट नहीं करता ॥११॥

सगों के जो न आया काम .....

भावार्थ—जो अपने सम्बन्धियो के भी काम नहीं आ सका, (उनका कुछ भला नहीं कर सका तो) वह जाति का हित क्या करेगा जिससे (केवल एक छोटा सा) परिवार ही न पल सकता वह (एक बडे) नगर को क्या पालेगा ॥१२॥

रंगा जो रंग में उसके

शब्दार्थ=वसन=वस्त्र।

भावार्थ—जो भगवान् के प्रेम मे रंगा हो और उनके चरणो की धूलि बना हो वह क्योंकर अपने कपडों को गेरुए इत्यादि से रंगेगा या शरीर पर राख (भस्म) मलेगा। अर्थात् नकली दिखावे के वेप बनाने की अपेक्षा एक मात्र भगवान् के प्रेम से ही अपने शरीर को रंगना चाहिए ॥१३॥

शब्दार्थ—धीरा=धैर्य वाला। बातूनी=केवल बाते बनाने वाला। बलेगा=जलेगा। खस=घास।

भावार्थ—धैर्य वाला पुरुष ही काम करेगा, गप्पी आदमी तो कुछ न कर पायेगा। घास तो मिनटों मे ही बुझती है क्या वह कभी लकड़ी की तरह जलेगी ? अर्थात् जैसे आग के सामने घास

अधिक देर तक नहीं ठहर सकती वैसे ही बातूनी लोग भी काम के सामने नहीं ठहर पायेंगे ॥१४॥

न आंखों में बसा जो……

भावार्थ—जो किसी की आंखों में ही नहीं बस सका वह उसके मन में कैसे बस सकेगा ? जो दरिया में भी नहीं तैर सका वह समुद्र को कैसे तैरेगा। अर्थात् जैसे समुद्र में तरने के लिये पहले नदियों को तैरना आवश्यक है वैसे किसी के मन में स्थान लेने के लिये पहले उसकी आंखों (निगाह) मे बसना आवश्यक है, जो निगाह से ही गिर जाता है वह मन मे मान कभी नहीं पा सकता ॥१५॥

जन्म भूमि

सुरसरि सी सरि है कहा……

शब्दार्थ—सुरसरि = गंगा । मेरु = पर्वत । आन = दूसरी पग = चरण । रज = धूल । अवनि = धरती । जलजात = कमल जननी-जनक = माता पिता ।

भावार्थ—गंगा के समान अन्य नदी कहाँ है और सुमेरु के समान अन्य पर्वत कहां हैं, इसी तरह जन्म भूमि (भारत वर्ष) सी धरती भी पृथ्वी तल मे और कोई नहीं है ॥१॥

हम भक्ति से भरे पुष्पों से प्रतिदिन श्रद्धा पूर्वक अपनी जन्म भूमि की पूजा करें और कभी भी इस को भूल न जाये ॥२॥

अपनी मातृ-भूमि के चरणो की सेवा ही मनुष्य के जीवन का सार है। राज्यसिंहासन मिलने पर भी हम को अपनी जन्म भूमि की धूलि का प्रेम रहे ॥३॥

हम उस को जीवन भर सम्पूर्ण पृथ्वी का सिरताज माने और इस जन्म-भूमि-रूपी कमल के हम भौंरे बन कर (प्रेम करते) रहे ॥४॥

कौन ऐसा मनुष्य है जो कि अपने माता-पिता को,जन्म-भूमि की उस की बड़ाई तथा गुणो का गान करता हुआ नहीं पूजता है ॥५॥

उपजाती है फूल फल......

शब्दार्थ—खेह = धूल (मिट्टी)। सदन = घर। कंचन = सोना। वार = बलिदान। विटप = वृक्ष। पूत = पवित्र। सुषमा = कान्ति। समवेत = मिली हुई। निकेत = घर।

भावार्थ—जन्मभूमि की मिट्टी फूल एव फलो को पैदा करती है। सुख के भण्डार में लगे हुए कान्तिमय घर तथा सोने का शरीर प्रदान करती है ॥६॥

जिस भूमि से हम उत्पन्न हुए हैं उसी के हित करने मे लगे रहे और जन्म भूमि पर अपने शरीर को न्योछावर कर के हमारा जन्म सफल हो ॥७॥

हम सभी जन्मभूमि के लिये योगी बन कर योग साधन करें। तन मन धन से उस की ही सेवा करे। जन्मभूमि के पदार्थों का भोग संसार के सभी भोगो से बढ़ कर है ॥८॥

यहा के सारे बबूल भी फल देने वाले कल्पवृक्ष के समान हैं। इस जन्मभूमि की धूल नारायण के चरणो की धूलि के समान पवित्र है ॥९॥

इसी जन्म भूमि मे सारे सुख तथा सारी शोभाएँ एकत्रित हैं और यह भूमि अतुल्य रत्नों के साथ ही साथ मनुष्य-रत्नो की भण्डार है ॥१०॥

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

जीवन-परिचय

पूर्ण जी का जन्म भदसमुनि जिला कानपुर में हुआ था। आप जाति के कायस्थ थे। धार्मिक और गम्भीर होने के साथ ही साथ आप हास्य प्रिय भी थे। आप की रचनाओ से यह अनुमान लगाया जाता है कि आप अच्छे समाज सुधारक होने के साथ ही साथ देश सेवी भी थे। रहस्यवाद की कल्पनाएँ भी आप की रचना में पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

ईश्वर—महिमा

पृष्ठ ६७—तिहारो को बरने गुनजाल...

शब्दार्थ – अकथ=न कहने योग्य। दीसत = दिखाई पड़ती है। नभ = आकाश। द्वै विधि = दो प्रकार की। प्रमानी = प्रमाण रूप से, योग्य। अखिल = सारा। अनुमात्र = थोड़ा-सा। उरझति = फँसती है॥

भावार्थ—हे भगवन्! तुम्हारे गुण-समूह का कौन वर्णन कर सकता है। जिस की अवर्णनीय महिमा दसों दिशाओं और तीनों लोकों में दिखाई पड़ती है। जिसने चन्द्र सूर्य इत्यादि ग्रह और असंख्य तारे बनाये हैं जो कि निराधार आकाश में अलग अलग (विराजमान) हैं। जो अपनी दो प्रकार (प्रकृति और पुरुष अर्थात सृष्टि तथा आत्मा) की विचित्र शक्ति के द्वारा अपनी गति को प्रमाणित करता है। तीनों लोकों में कौन बसता

[illegible] किस [illegible] और [illegible] रूपों में रहता है ?
भगवान के [illegible] भी सभी [illegible] विचार करने में बुद्धि [illegible] हो जाती है । [illegible] एवं अन्त रहित को विचारते हुए [illegible] तुम्हारा ध्यान करने पर और आप को, [illegible] जाता है उस का वर्णन करते हुए हमारी बुद्धि [illegible] ([illegible]) रूपी जाल में फँस जाती है ।

[illegible]

शब्दार्थ—मीन = मछली । बिहग = पक्षी । पनित = विशाल । सिरजि = पैदा कर के । कानन = जंगल । शैल=पर्वत । ज्याय= पैदा कर के ।

भावार्थ चींटी, मछली, पक्षी, मनुष्य और हाथी इत्यादि अनगिनत प्राणियों को इस विशाल संसार में किस प्रकार उत्पन्न कर के फिर उन की पालना करते हो और अन्त में मार देते हो, हे सब की रक्षा करने वाले ! तुम धन्य हो । हर एक वृक्ष को पत्र, पुष्प, जड़ तथा शाखाओं से सजा कर अपना अधिकार दिखाते हो ।

सूक्ष्म (बारीक) चीज जो कि दिखाई भी नहीं देती वह आगे चल कर चित्त भाने लग जाती है । हे बड़ी बड़ी कारीगरी करने वाले ! जब वह चीज बन जाती है, तो उस का कुछ विचित्र ही रंग दिखाई देने लगता है ।

माता के पेट में एक पिण्ड (माँस का गोला) बना कर उसे जीव की शकल में पैदा करते हो । तुम उस (जीव) को पैदा कर के पालते हो और फिर मार कर नष्ट करते हो, इस प्रकार तुम्हारी गति जानी ही नहीं जाती ।

पृष्ठ ६८—प्रानी जात कहा तन त्यागी··· ··

शब्दार्थ—प्रानी=जीव । जेहि लागी=जिस के लिये ।

राशी = भण्डार । भुवाल = राजा ।

भावार्थ—यह जीव शरीर को छोड़ कर कहां जाता है जिस के लिये पिता पुत्रादि रो पड़ते हैं । यह दीन तथा भाग्य रहित जीव बड़े बड़े दुःखों को सहन करता रहता है । हे प्राणनाथ ! हे पूर्णस्वरूप ! हे नाश रहित ! हे दयालो ! हे सुन्दर तथा सुखो के भण्डार ! हे सत् चिद् एवं आनन्द स्वरूप अविनाशी ! हे संसार के राजा ! तुम्हारी जय जयकार हो ।

पंचवटी-शोभा

प्रसग—दक्षिण मे गोदावरी नदी के तट पर एक जंगल है । यहां पर रामचन्द्र जी बहुत समय तक रहे थे और यहां पर रावण ने सीता जी का हरण किया था । यहा प्राकृतिक दृश्य अब भी मन को मोहित करते हैं ।

हरे हरे लहलहे विपुल द्रुम......

शब्दार्थ—वृन्द-वृन्द = झुण्ड के झुण्ड । लोनी = सुन्दर । वलित = युक्त, भरे हुए । बैंजने = बैंगनी रंग के । चंचरीक = भौंरा । मकरन्द = कमल का रस । केकी = मोर । कीर—तोता । कोक = चकवा । लवा = बटेर । लूकि = लूक कर, स्वतन्त्र हो कर । सरोज = कमल ।

भावार्थ—पंचवटी का जंगल हरे भरे और लहलहाते हुए वृक्ष समूहों से शोभा पाता है । सुन्दर लताओं से सुशोभित और फलों से झुके हुए वृक्ष मन को मोहित करते हैं । उन वृक्षों पर लाल पीले, सफेद और बैंगनी रंग के सुन्दर फूल खिले हुए हैं । गूंजते हुए भौंरे फूलों का रस पीने में मस्त हो रहे हैं । मोर, तोते

[illegible], कोयल, पपीहा [illegible], [illegible], मैना, [illegible], लालमुनिया* इत्यादि अनेक प्रकार के [illegible] सुन्दर पक्षी चारों ओर मीठी मीठी बोलियाँ बोल [illegible], [illegible], [illegible], (नाचा) करते। और [illegible] मन को बहुत ही [illegible] करते हैं। [illegible] पर सुन्दर सुन्दर चमक शोभा देते हैं। [illegible] फूलों से सुगन्ध आने लगती है जिससे मन [illegible] हो जाता है। इस पवित्र एवं अत्यन्त रमणीय जंगल की [illegible] सजावट (शोभा) को देखते हुए देवता लोग भी आनन्द में मग्न हो कर इस पर सैकड़ों नन्दन वनों को न्योछावर कर देते हैं।

वर्षा का आगमन

पृष्ठ ६८—६६—[illegible] सुगन्धित

शब्दार्थ—सुचि = शुद्ध। पवन = वायु। सलिल = जल। वसुधा = पृथ्वी। सुखमा = शोभा। सुमन = फूल। मंजुल = सुन्दर। हरित-मनि = मरकत मणि, पन्ना। इन्द्रवधून = वीरबहूटियों की (वीर बहूटी एक लाल कीड़ा होता है जो कि वर्षाकाल में हरे घास पर सुन्दर प्रतीत होता है)। अवलि = कतार। मानिक = लाल रंग का रत्न। चन्द्रहास = तलवार। चपला = बिजली।

---

*लालमुनिया—एक भूरी और लाल (माया) चिड़िया जिस पर छोटी छोटी सफेद बुन्दकिया पड़ी रहती हैं। अत्यन्त कोमल और मीठी बोली बोलने वाली होती है। 'ते अपने अपने मिलि निकसी भांति भली। मनु लालमुनिन की पांति पिंजर टूटि चली।'

सूर

भावार्थ—वर्षाकाल में सुख देने वाली शुद्ध हवा बहने लगी है। जल बरसने लगा है और पृथ्वी शोभा धारण करने लगी है। कोमल कोमल पुष्पों की लताएँ लहलहाती हुई हिलने लगीं। फूलों से लदे हुए हरे हरे सुंदर तथा विशाल वृक्ष झूमने लग गये।

मरकत मणि के समान हरी पृथ्वी मन को हरने लगी। वीरबहूटियों की कतार शोभा पा रही है। उन की शोभा माणिक्य—रत्नों के समान है। सफेद बगुलों की कतार ऐसी शोभा पा रही है मानो एक बड़ी मोतियों की माला हो। इसी तरह बिजली भी तलवार के समान चमक रही है ।।२।।

नीर नीरद सुभग सुरधनु……

शब्दार्थ—नीरद = बादल । सुरधनु = इन्द्रधनुष । वलित = घिरा हुआ । घनस्याम = मेघ के समान श्याम वर्ण, कृष्ण । उफनान = बाढ से भर जाना । दादुर = मेढक । त्रिविध = भूरे, काले, सफेद तीन रंग वाले मेढक अथवा पूंछ वाले छोटे, पूंछ रहित और बडे यह तीन प्रकार के मेढक। रुचन लागे = पसन्द आने लगे। केकी = मोर। पावस = वर्षा काल। हनत = ताडन करता है। अमल = अधिकार।

भावार्थ—शोभा के स्थान (सुन्दर) इन्द्र धनुष से घिरा हुआ नीला नीला बादल इस प्रकार शोभा पाता है मानो वनमाला धारण किये हुए भगवान् कृष्ण विराजमान हों। (वनमाला भी नीले, पीले, लाल और सफेद इत्यादि कई रंग वाले पुष्पों से बनी है) कुएँ, कुण्ड (चश्मे) तथा गहरे तालाबों मे पानी भरने लग गया है। नदी और नदों में बाढ़ आने लगी और झरने बहने लगे।

करना)। पाय = पैर। छिड़ाय = छोड़ कर। नयन = नेत्र। श्रवण = कान। पाय = पाकर। रसना = जीभ। मुरदा = मरे हुए प्राणी (बकरा आदि का मांस) बेगि = जल्दी से। काय = शरीर।

भावार्थ—हे नीच मनुष्य! तुम्हारा यह जीवन गुजरता चला जाता है। तू तो (भगवान से उसका) भजन करने की प्रतिज्ञा करके (इस संसार में) आया था, अफसोस है कि तुम उसे भूल गये। भगवान ने तुम को प्राणियों को अभय देने के (अहिंसा के) लिये हाथ और तीर्थों में जाने के लिये पैर दिये थे, परन्तु (उस के बदले) तुम उन्हीं हाथों से हिंसा करते हो और दूसरे की स्त्रियों का अपहरण करते हो तथा सन्मार्ग छोड़ कर दूसरी ओर चल रहे हो। उत्तम (देव मुनि, सत्पुरुष इत्यादि) पदार्थों के दर्शन के लिये नेत्र, और भगवान् के कीर्तन के सुनने के लिये इन कानों को पा कर तुम उन्हीं से विषयों में मन को आसक्त करके पापमय पदार्थों को देखते हो और पापमय बातें सुनते हो। यह जिह्वा तो नारायण का नाम जपने के लिये पाई थी परन्तु उसी से तुम मुरदे (मांस) खाते हो और कपट, निन्दा तथा चोरी की बातें करते करते तुम्हारा रात दिन बीत जाता है। 'पूरन' कवि कहते हैं कि अभी भी समय है, जल्दी प्रयत्न करो और अपने मन, वचन तथा शरीर को उस प्रभु को सौंप दो (सर्वात्मना उस का भजन करो)।

विनय

धन दीजै विपुल अतुल जस मान दीजै……

शब्दार्थ—अतुल = बहुत। संगति = मेल। अशेष = सम्पूर्ण। नीति अनुसारन = न्यायपूर्वक कार्य करने में। गेह = घर।

ह=प्रेम। उधारन=करना। जलधि=समुद्र। बार=देरी।

भावार्थ—हे भगवन्! हम को धन, यश तथा आदर अधिक मात्रा में दीजिये। उदार चरित्र वाले सत्पुरुषों से हमारा मेल कराइये, हमें शुद्ध चरित्र वाली सन्तान और सम्पूर्ण धन प्रदान कीजिये। नीति के अनुसार व्यवहार करने में हमें रुचि दीजिये। शरीर और घर का सुख तथा अपने चरणों का प्रेम दीजिये। हे दयामय हम दीनों के प्रार्थना करने पर प्रसन्न हो जाइये। हे पतितो के उद्धार करने वाले! हे दया सागर प्रभो! आपने हमारी आपत्ति को दूर करने मे देरी क्यों लगाई है?

—०—

लक्ष्मी

पृष्ठ ७१—सम्पत्करी सर्वव्यथा-हरी है ·····

शब्दार्थ—सम्पत्करी=सम्पत्ति (धन) देने वाली। सर्वव्यथा हरी=सम्पूर्ण पीडाओ को दूर करने वाली। तेजः करी=बल देने वाली। भूरि यशः करी=अधिक यश को देने वाली। लोकेश्वरी=ससार की स्वामिनी। देवगणेश्वरी=सब देवताओं की मालिक। प्रभास=दीप्ति। ओक=स्थान। साकेत=अयोध्या। रवि मालिका=सूर्य की किरणे। करालिका=भयानक। जन-पालिका=मनुष्यों का पालन करने वाली। जलबालिका=एक बाला के रूप मे जल (समुद्र) से पैदा हुई।

भावार्थ—लक्ष्मी देवी (धन) सम्पत्ति देने वाली, सब दुःखों को हरने वाली, बल देने वाली, अधिक कीर्ति करने वाली, सम्पूर्ण लोको की स्वामिनी, सब देवताओं मे बड़ी स्वामिनी, अन्न प्राण तथा धन को देने वाली है।

हे लक्ष्मी ! इन्द्र के सारे लोकों में तुम्हारी ज्योति है, कुबेर का स्थान (अलकापुरी) भी तुम्हारे से ही प्रकाशमान है, अयोध्या और कैलास में तुम्हारा निवास है और भगवान् विष्णु के पास तुम (उस की प्रियतमा बन कर) शोभायमान हो।

अज्ञान को दूर करने के लिये तुम सूर्य की किरणों की माला हो। विपत्ति को हटाने के लिए तुम भयानक काल हो। तुम दया सागर, लोगों की पालना करने वाली, अनूठी माता और सागर की पुत्री हो।

विद्यावती है गरिमावती है... .

शब्दार्थ—गरिमावती = गौरवयुक्त। प्रज्ञा = बुद्धि। महिमा = प्रभाव। शंकरी = कल्याण करने वाली अथवा भगवान् शंकर की शक्ति। प्रभा = कान्ति। प्रतिभा = विलक्षण बुद्धि। वीथी = गली मार्ग। हरेरी = हरियाली पैदा करने वाली। ललाम = सुन्दरता घनश्याम = श्याम रंग वाले मेघ। तुषार = बर्फ।

भावार्थ—हे माता, तुम विद्या, गौरव, बुद्धि और महिमा से युक्त हो। तुम कल्याण करने वाली (या शंकर की शक्ति पार्वती) तथा सरस्वती हो। तुम शोभा तथा विलक्षण बुद्धि से युक्त हो

व्यापार के मार्ग मे तुम उजाला करने वाली हो और ससार रूपी खेती मे हरियाली पैदा करने वाली हो। उद्योग (व्यवसाय) रूपी बाग की तुम वसन्त हो, तुम्हीं सारी दिशाओं मे सार (प्राप्य वस्तु) और अन्तरहित हो।

पृष्ठ ७२—वसन्त म पुष्प ललाम तू है......

भावार्थ-वसन्त ऋतु मे तुम फूलों की सुन्दरता हो, वर्षा में फिरने वाले काले काले बादल भी तुम्ही हो। तुम हेमन्त मे शोभायमान ब

इस संसार की माता (संसार) और सारभूत त्रुटी

[illegible] ... ..

शब्दार्थ—मंगला=मंगलमय। धाम=स्थान। निकेत=घर। अम्ब=माता। आदित्यवर्णी=सूर्य के समान कान्ति की। वन्दौं=वन्दना करता हूं। शक्री=इन्द्र शक्ति। माधवी=विष्णु की शक्ति। सुमालिनी=उत्तम माला धारण करने वाली। देवोत्तमा=देवताओं में उत्तम। मा=माता या लक्ष्मी।

भावार्थ—तुम कल्याण स्वरूप और कल्याण करने वाली हो हे माता! तुम परम पिता (नारायण) के समेत हमारे मन में निवास करो।

हे माता! तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो संसार में कौन मुझ पर अप्रसन्न (अथवा मेरे साथ उल्टा व्यवहार करने वाला) है। तुम सूर्य के समान प्रकाश वाली और संसार की रानी हो। मैं मन, शरीर तथा वचन से तुम को प्रणाम करता हूं।

तुम इन्द्र की शक्ति (इन्द्राणी), विष्णु की शक्ति (लक्ष्मी) की जयकार हो। तुम उत्तम माला और वनमाला धारण करने वाली हो। तुम देवताओं में उत्तम, अतिशय मनोहर, तीन लोकों की माता और सम्पूर्ण पदार्थों की उपमा (तुलनात्मक वस्तु अर्थात् शोभा) हो, तुम को जय जयकार हो।

—०—

रामचरित उपाध्याय

जीवन-परिचय

उपाध्याय जी का जन्म सं० १९२९-कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को गाजीपुर मे हुआ था। आप को रामचरित त्रिपाठी नामक कवि की प्रतिस्पर्धा से कविता करने की रुचि हुई। महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री आप के विद्या-गुरु थे। आप खड़ी बोली में अत्यन्त मधुर एवं सरल कविताएँ करते थे। आप की कविताओ मे देश-प्रेम तथा समाजसुधार की झलक रहती है। आप ने रामचरित चिंतामणि, देवदूत, देवसभा आदि ग्रन्थो की रचना की है।

आप सं० १९९६ में स्वर्गवासी हो गये।

प्रभात-जागरण

पृष्ठ ७५—शिशुत्व चारों शिशुतात-गेह में······

शब्दार्थ—शिशुत्व = बचपन । तातगेह = पिता के घर । विलोक के = देख कर के । सुधासने = अमृत से भरे हुए। नभोऽङ्क = आकाश की गोद। निशेश = चन्द्रमा।

भावार्थ—(राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) चारों बालक पिता के घर मे प्रेम से बँधे हुए बचपन को दिखाने लगे । जिस (बाल क्रीड़ा) को देख कर राजा की रानिया आनन्द प्राप्त करती थीं। (ठीक है) पुत्र किसको सुख नहीं देता ॥१॥

रामचन्द्र जी कभी भी प्रभात में नहीं उठते थे यद्यपि अन्य बन्धु जन प्रात. ही उठ खड़े होते थे। माता (कौशल्या) खिली हुई चम्पक की नई कली के समान उन्हें स्वयं जगाने के लिये चली गई ॥२॥

इसीलिये हे राम ! मैं तुम को जगा कर अपने धर्म (दुष्ट नाशन रूप कर्त्तव्य) में लगा रही हूँ ॥ ८ ॥

रात्रि के अन्त के साथ चन्द्रमा भी चल पड़ा, मानो पृथ्वी के सिर से आपत्ति टल गई हो। हे राम ! उठो, यह देखो भौंरों की वह पंक्ति कैसी अच्छी शोभा को दिखा रही है ॥ ९ ॥

ये भौंरे गा गा कर जगत् को जगा रहे हैं और सब को अपने अपने उत्तम कामों मे लगा रहे हैं। हे राम ! दूसरों का उपकार करना मत भूल जाओ और उठ कर अपने बन्धुओं को आनन्द दो ॥ १० ॥

पृष्ठ ७७—दिखा रहा है शिशु सूर्य धाम को—

शब्दार्थ—धाम=स्थान, प्रकाश। विलोलता=चहल पहल। विराम=विश्राम। रमा=लक्ष्मी। सुखाप्ति=सुख की प्राप्ति। लिप्त=भरा हुआ। सोम=चाँद। विधेय=होनहार। दृगाब्ज= नेत्र रूपी कमल।

भावार्थ-यह बाल रवि (उदयकालीन सूर्य) अपने धाम (प्रकाश) को दिखा रहा है। और अन्धकार रूपी दुश्मन के नाम को भी मिटा रहा है। जगत् मे बड़ी चहल पहल हो रही है, हे राम ! अब आराम (नींद) करने का समय चला गया ॥ ११ ॥

जो अपने कुल को मानता हो, भला वह कभी दुःख को क्यों सहन करेगा। तुम सूर्य वंश मे पैदा हुए हो, इस बात को मत भूलना। हे प्यारे ! तुम नारायण के अवतार हो ॥ १२ ॥

जो शत्रु पर क्षमा करता है उस को लक्ष्मी यदि मिल भी गई हो, तथापि वह उसकी नहीं है। यही कारण है कि चन्द्रमा हर तरह से सदा दीन ही रहता है (चन्द्रमा सौभाग्य किरणों वाला है। अतएव यदि उसे प्रकाशमय धन मिला भी है परन्तु वह

यह बात बुद्धिमान लोगों से छिपी नहीं है। अपने देश की सेवा रूपी व्रत में मन भागो। हे राम! उठो और उत्तम कर्म में लग जाओ ॥१७॥

जो समय बीत गया वह स्वप्न में भी फिर न मिलेगा। अत हे राम! अपने कर्तव्य पर ध्यान दो और नींद से जागो, देर मत करो ॥१८॥

हे हरे! जो मनुष्य उद्योग रहित होकर सुख भोगता है वह चाहे राजा अथवा स्वयं इन्द्र ही क्यों न हो, उस का पतन अवश्य होता है। रे बच्चे! क्या तुम्हारी अभी तक भी आँख नहीं खुली। (नींद नहीं टूटी) ॥१९॥

तुम प्रभावशाली कुल के सूर्य हो, राजा (दशरथ) के पुत्र तथा साक्षात् भगवान हो। हे राम! उठो जरा अपने कुल का नाम तो (रोशन) करो और अपने काम-काज को संभालो ॥२०॥

जिस को तुम शिक्षा दिया करते थे आज वही (कौशल्या) तुम को सिखा रही है। पर तुम्हे ध्यान ही नहीं। उठो, जरा कुछ नया काम करके तो दिखा दो, हे राम! अब अच्छे काम का शुभ अवसर आ गया है ॥२१॥

——o——
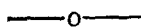
धनुष-भंग

पृष्ठ ७९—ज्यों वृषपति का परुष धनुष ...

शब्दार्थ—वृषपति = शिव। परुष = कठोर। भृगुपति = परशु-

पूर्व जन्म के कर्म जब फलैं जन्म में आन।
भले बुरे उन फलन को भाग्य कहैं मतिमान॥
—'चरक'

म। रुप=क्रोध। स्वेद=पसीना।

भावार्थ—जिस समय रामचन्द्र जी ने शकर का कठोर धनुष तोड़ दिया, उसी समय किसी से परशुराम ने यह वृत्तान्त सुना। जिस प्रकार अद्भुत रस में वीर रस प्रकट हो जाय उसी प्रकार भृगुनाथ (परशुराम) वहां क्रोध के आवेग में प्रकट हो गये। शिव धनुष को टुकड़े-टुकड़े हुआ देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ, (ऐसा कौन है जो उनके शरीर की ज्योति देख कर पसीना-पसीना न हो गया हो) ॥१॥

कर्क, कृदक ....

शब्दार्थ—हर-कोदण्ड=शिवधनु।

भावार्थ—धमकी देकर और खड़े होकर वे ऐसे बोल उठे मानो कमल के समूहों पर एकाएक ही ओले बरसने लगे हों। हे जनक! ये राजा लोग यहां कैसे आये हैं और भगवान् शकर का धनुष तोड़ कर यहां किसने गिराया है? क्यों, तुम कुछ उत्तर क्यों नहीं देते? ऐसे ही झूठे सन्त बने बैठे हो, क्या आज ससार को परशुराम के हाथ से समाप्त हो जाना है? ॥२॥

क्यों होकर वर विज्ञ ...

शब्दार्थ—विज्ञ=समझदार। अज्ञ=मूर्ख। विपक्षी=दुश्मन।

भावार्थ—तुम ने समझदार होकर भी यह मूर्खता का काम क्यों किया? क्यों तुमने अपने प्यारे सिर को मेरे हाथ समर्पण किया है (अब मैं तुम्हारा सिर काट दूंगा।) हे जनक, जैसे सूर्य के होते थोड़ा भी अन्धकार नहीं रहता, वैसे ही मेरे रहते मेरा शत्रु नहीं रहेगा। मूर्ख! शिव धनुप को तोड़ कर काल भी नहीं बच सकता, उस काल का बड़ा भारी अभिमान भी मेरे क्रोध-रूपी

अग्नि से पक जायगा (जिस प्रकार अग्नि सब को भस्म कर देती है उसी तरह मेरा क्रोध उस के गर्व को नष्ट कर देगा) ॥३॥

इस अकार्य में योग दिया ..

भावार्थ—इस अनुचित कार्य में जिस किसी ने भी साथ दिया हो, अथवा जिस ने भी अभिमान से भरा हुआ पाप किया हो, अथवा जिस ने शिव धनुष का भंग करना यहां देख भी लिया हो, तुम देखो, मैं उस की ठोडी (सिर) के अभी अभी टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। हे शठ! जल्दी उस का नाम बताओ जिस ने यह शिवधनुष तोड़ा है, यदि मैं उसको दण्ड न दूँ तो मेरा नाम परशुराम नहीं ॥४॥

पृष्ठ ८०—परशुराम के हाथ राम अब······

शब्दार्थ—विदेह=जनक। कडक कर=गर्जकर।

भावार्थ—अब राम परशुराम के हाथ से बचने नहीं पायेंगे और जनक को सीता के लिये अब दूसरा यत्न करना होगा। तब मैं आकर सीता को ले जाऊँगा और इस समय यहाँ व्यर्थ में प्राणों को नहीं खोऊँगा। इस तरह के वचन कहते हुए सभी राजा लोग खुशी खुशी अपने अपने घर को चले गये। सभा में इस तरह गड़बड़ी देखकर राजा जनक को चिन्ता होने लगी ॥५॥

किया मनोरस भग······

शब्दार्थ—भूदेव=ब्राह्मण।

भावार्थ—परशुराम ने सभा में आ कर रंग मे भंग कर दिया। रामचन्द्र ने उन की तरफ हँस कर देखा और कुछ भी न कहा। परन्तु लक्ष्मण परशुराम के वचनों को सहन न कर सके। क्रोध में गर्जने हुए कहने लगे—हे मुनि! ब्राह्मण बहादुर नहीं होते, आप

[illegible] मत [illegible] ॥८॥

[illegible]

शब्दार्थ—[illegible] = [illegible] । नय-नागर = नीति निपुण ।

भावार्थ—[illegible] ब्राह्मण हैं जो कि विनय से युक्त हो, वज्र के समान कठोर वाक्य किसी को न [illegible] । जो शान्ति, दमन, [illegible], नियम और सदाचार का सागर हो, दया, धर्म और सन्तोष से युक्त हो और नीति-निपुण हो । हम तो क्षत्रिय के धर्म को प्रकार जानते हैं । आप हमें शस्त्र क्या सिखा रहे हैं । हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! आप अपने (ब्राह्मण) धर्म को कीजिये और हमें शास्त्र की शिक्षा दीजिये (ब्राह्मण शास्त्र का उपदेश दे सकता है न कि शस्त्र का) ॥७॥

पृष्ठ ८१—भारतीय मैं हूँ, भारत है दुखी ... ..

शब्दार्थ—समासीन = बैठा हुआ । विशेष = सारा । निदेश = आज्ञा ।

भावार्थ—मैं भारतवासी हूँ, भारतवर्ष दुख में है अत. मैं कैसे सुखी रह सकता हूँ । सुखी लोगों के बीच मे बैठ कर मैं दुखी हो कर कैसे रोऊँ । मेरा कुछ विशेष पुण्य बाकी है जो [illegible] सहन नहीं होता । मुझे आज्ञा मिले तो मैं देशको चला जाऊँ, मुझे परदेश पसन्द नहीं आता ॥१॥

स्वर्ग लोक-सम सुखद...

भावार्थ—स्वर्ग के समान क्या कोई दूसरा लोक सुखदायी हो सकता है ? क्या मानस सर के बिना किसी और जगह सोने का

कमल खिल सकता है ? तथापि मुझे अपने भारत के समान य
स्वर्ग लोक सपने मे भी प्यारा नहीं है । क्योंकि जिस व्यक्ति क
देश से अलग रहने का दुःख हो उस को यहां बिलकुल भी सु
नहीं प्रतीत होगा ॥२॥

गोरे काले में अन्तर भी ...

शब्दार्थ—दस्यु = डाकू । खल सकती = बुरी लग सकती है।

भावार्थ—हे प्रभो ! यहा पर तो गोरे (अंगरेज) तथा का
(भारतीय) का भेद भी हमेशा रहता है । डाकुओं का समुदाय भ
यहाँ बेखटके रहता है । (उन को सरकार उचित दण्ड नहीं देती
और आर्यों को कष्ट सहना पड़ता है । यदि काले व्यक्ति को को
गोरा मारता है तो उस को दण्ड नहीं मिलता, भला यह अन्या
की नीति किस को बुरी नहीं लगती ?

जिस उद्यम को कर के.

भावार्थ—एक भारतीय जिस कार्य के लिये आठ रुपये ले
है उसी कार्य को यदि एक गोरा करे तो उसे साठ रुपये मिलते हैं
अगर हम इसी को न्याय मान ले तो फिर अन्याय किस (चिडिय
का नाम होगा । हे देवराज ! अब कहां तक (यह कष्ट) सहे, भा
दीन और दुखी हो गया है और वह अब चुप कैसे रहे ?

जाने कब तक मुझे कर्म वश...

शब्दार्थ—दृग फल = नेत्रों का आनन्द । साकेत रेणु =
अयोध्या की धूल । अपवर्ग = मोक्ष ।

भावार्थ—(कवि अपने को स्वर्ग मे बैठा हुआ समझता है औ
वहा पर भी अपनी जन्मभूमि भारत का विरह अनुभव करता
और कहता है—) न जाने अपने पुण्य कर्मों के कारण मुझे य
से कब छुटकारा मिले ? भगवान जाने मेरे प्यारे भारत का क

पतन निश्चित है

भावार्थ—जिस का पतन निश्चित हो उसे अपने शरीर से हठ करना अधिक प्रिय लगता है। उस पर विधाता की प्रतिकूलता स्थिर रहती है। वह नम्रता तथा नीति से दूर नहीं होती ॥ ३ ॥

तनिक चिन्तित ··

भावार्थ—तुम बिलकुल चिन्ता न करो, होनहार (भाग्य) टल नहीं सकता। हे मन! तू इस बात को मान जा कि घर अथवा जंगल में अच्छा काम (धर्म) ही रक्षा करने वाला है ॥ ४ ॥

पृष्ठ ८३—महिमता जिस की

भावार्थ—जिस के प्रभाव को देख कर दुष्ट जन लगातार निन्दा करते हैं यदि उसका भाग्य बलशाली है तो उस का यश संसार में उज्ज्वल रहता है (अर्थात् भाग्यशाली का दुष्ट पुरुषों की निन्दा कुछ नहीं बिगाड सकती) ॥ ५ ॥

हृदय सुस्थिर हो कर देख तू

शब्दार्थ—रमा = लक्ष्मी। रमणी = स्त्री। नियति = दैव। ग़म = चिन्ता। परिष्कृत = सजाया हुआ, माना हुआ। विभवता = ऐश्वर्य। गुणान्वित = गुणयुक्त, विशारद, पण्डित। जनन = जन्म।

भावार्थ—हे हृदय! तू निश्चयपूर्वक समझ ले कि जिस पर विधि (भाग्य) बली (अनुकूल) है उस के लिये तो कठिन काँटेदार रास्ता भी सुगम है और चिन्ता करना व्यर्थ है ॥ ६ ॥

दुखित हैं धन-हीन

भावार्थ—हे मन! यदि यह विचार सही है कि धनरहित दुखी होते हैं और धनवान् सुखी, तो फिर युधिष्ठिर को धन सम्पत्ति की संसार में दुखकर क्यों हुई थी। (राजसूय यज्ञ के अवसर पर

जब दुर्योधन ने पाण्डवों की सम्पत्ति देखी तो वह चिढ़ गया और उस ने उन को राज्य से गिराने के लिये कपट रूप से जुआ खेलने के लिये बुला कर उन्हें राज्यहीन कर दिया था) ॥ ७ ॥

सन्त सरल गुणान्वित ....

भावार्थ—इस संसार में सैकड़ों तथा हजारों गुणी लोग मौजूद हैं और अनेक शास्त्रों के पण्डित भरे पड़े हैं। परन्तु हे हृदय ! फिर उन में से क्यों एक ही दो ऐसे हैं जिन्हों ने लोगों की सेवा की है ॥८॥

जनन का मरना ....

जन्म का अन्तिम फल मरना है। यदि मृत्यु न मिले तो फिर नया शरीर कैसे मिले ? हे मन ! बलवान् दैव की क्रिया से शरीर के पतन का बहुत पुराना सम्बन्ध है ॥९॥

मन ! रमो रमणी ..

भावार्थ—यदि दैव की इच्छा से लक्ष्मी, स्त्री, और सुन्दरता मिल भी गई तो क्या हुआ ? परन्तु जिस को कवित रूपी अमृत न मिला उस के लिये तो आनन्द रेत के समान है ॥१०॥

(पृष्ठ ८४—अयश है मिलता अपभाग्य से ..

शब्दार्थ—अपभाग्य = दुर्भाग्य। कुत्सित = निन्दित। विबुध = देवता। बुध = बुद्धिमान्। कवल = ग्रास। सुविध = अच्छा स्वभाव। सरसीव = तालाब की तरह। सरस्वती = वाणी, कविता। अमर-प्रदा = देव भाव को देने वाली। चतुरानन = ब्रह्मा। भाल = माथा।

भावार्थ—यद्यपि अपयश बदकिस्मती से मिलता है तो भी हमें निन्दित कर्म करने से डरना चाहिए। हे हृदय ! देख, इस

संसार मे चन्द्रमा जैसे साक्षात् देवता तथा विद्वान् भी कलंकित (दोषयुक्त) हो गये ॥११॥

स्मरण तू रखना……

भावार्थ—हे मन ! तू शोक को छोड़ दे और यह याद रख कि समयानुसार सब को मरना अवश्य है और बलवान् तथा निर्बल सब के सब काल के ग्रास बन जायेंगे ॥१२॥

अमर हो तुम……

भावार्थ—हे जीव ! तुम प्रसन्न हो जाओ, तुम अमर हो, कमर कस कर अपने भाग्य को सहन करो। परन्तु तुझे मृत्यु से लड़ना है। अगर तुझे हिम्मत नहीं तो मन मे हिम्मत धारण करो ॥१३॥

सुविध से विध से……

भावार्थ—तुम्हे सुगमता से या भाग्य से जल से भरे हुए तालाब के समान रस से भरी हुई वाणी (कविता) मिल गई है। हे मन ! तब तो तुझे अमर बनाने वाला नया अमृत पृथ्वी पर ही प्राप्त हो गया है ॥१४॥

चतुर है चतुरानन ….

भावार्थ—हे मन ! वही मनुष्य ब्रह्मा के समान चतुर है और उसी का माथा सुन्दर भाग्य से भूपित है, सौभाग्यशाली है जिस के मन मे दूसरे के काव्य की रमणीयता दुःख नहीं पैदा करती (जो दूसरे के सुन्दर काव्य पर ईर्ष्या नही करता) ॥१५॥

रामनरेश त्रिपाठी

जीवन-परिचय

त्रिपाठी जी का जन्म सं० [illegible] में जौनपुर जिला के कोइरीपुर गाँव में हुआ था। [illegible] ग्रंथों के लेखक हैं। आप ने 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' आदि [illegible] लिख कर काफी ख्याति प्राप्त की है। 'कविता कौमुदी' नामक [illegible] भी आप के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो गया है। यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य का एक अनुपम रत्न है।

आप की कविता में उच्च भाव और मनोहर शैली होती है। आप ने बालकोपयोगी पुस्तकें भी कई लिखी हैं। आज कल आप हिन्दी मन्दिर प्रयाग के अध्यक्ष हैं और वहीं पर रह कर प्रकाशन का कार्य कर के हिन्दी-साहित्य की सेवा कर रहे हैं॥

पश्चात्ताप

१२८७—[illegible] के कपोल [illegible]

शब्दार्थ—कपोल = गाल। क्षणभंगुर = एक पल में ही टूटने वाले। उसास = लम्बी साँस।

भावार्थ—मेरे जीवन का दिन मुख (गालों) के प्रकाश (सुन्दरता) में चला गया और रात बालों के अंधेरे में ही सरक गई। मैंने बचपन का सायंकाल और जवानी की आधी रात पल भर में ही नष्ट होने वाले विलास (ऐश्वर्य भोग) में बिता दी।

फिर प्रभात की किरणों से मेरे सफेद बाल चमकने लगे (बुढ़ापा आ गया) और मेरी आँखें मृत्यु की मन्द मन्द हँसी

के साथ खुल पड़ीं (अर्थात् जब कि मौत मेरे विल्कुल समीप आ गई तब मुझे होश आने लगा) । अब कौन जानता है कि अब मेरे दयासागर भगवान् का आसन मेरे लम्बे साँसों से किस समय गर्म होगा ? (अर्थात् अब मेरी मृत्यु न जाने किस समय होगी ॥)

रहस्य

वह कौनसी है छवि'' ...

शब्दार्थ—अमित = बेहद । पौन=वायु । लहता=ग्रहण करता । प्रसून=फूल । रिझाती = प्रसन्न करती ।

भावार्थ—वह कौन सी शोभा है जिस को सूर्य हर रोज अनेक किरणों का समूह भेज कर ढूँढता फिरता है। वह कौन-सा गान है जिस को पर्वत अपने शरीर के होशहवास भूल कर (सुनने के लिये) कान लगाये हुए चुपचाप खड़े हैं।

वह कौन सा सन्देश है जिस को हवा फूल से लेती है और पुष्प खिल जाता है। इस कोयल के मन का रहस्य भी कौन जानता है जो कि अपना गाना सुना सुना कर न जाने किस सहृदय को प्रसन्न करती है ॥

कहानी

पृष्ठ ८८—आंख मूंदिए तो'' .

शब्दार्थ—आंख लगते = दिल लगते ही । आंख लगती= नींद आती ।

भावार्थ—आँखों को बन्द करते ही (स्वप्न में) अपने घर का रास्ता

सुविचार

पृष्ठ ८९—दुख से दग्ध ताप से पीड़ित

शब्दार्थ—दग्ध = जला हुआ। पीड़ित = दुखी। शंकित = डरा हुआ। कृश = दुबला। विभ्रम = मोह। प्रपंच = माया। विह्वल = व्याकुल। अभित = बेहद। निशिवासर = रात दिन। अकर्मण्यता = कायरता, बेकारी।

भावार्थ—हे पथिक ! तू दुःख से झुलसा हुआ, गर्मी से दुःखी, चिन्ता के मारे बेहोश, मन से दुर्बल, थकावट से ढीला पड़ा हुआ तथा मौत से डरा हुआ हो कर मोह (अज्ञान या गलती) के कारण विषय रूपी विष को पी चुका। संसार के माया रूपी भयंकर दुपहर में प्यास से व्याकुल हो कर भक्ति रूपी नदी में क्यों नहीं नहाता और अपने जीवन को ठण्डा कर लेता ? इसी प्रकार मैं अनेक प्रकार की विचारों की धारा में अज्ञान के कारण मैं बहता रहता हूँ, परन्तु किसी किनारे पर नहीं पहुँच पाता। रात दिन रूपी बूंदों के रूप में मेरे शरीर रूपी घड़े से यौवन रूपी जल लगातार निकलता रहता है और एक क्षण भी रुकने नहीं पाता (काल की गति के साथ साथ यौवन भी क्षीण होता जाता है)। मैं घर के सुख को भोग नहीं सकता और दूसरों के दुःख को भी नहीं भूल सकता हूँ। जब मैं भगवान् के सामने जाने लगता हूँ तो अपनी कायरता से डरता हूँ।

पृष्ठ ९०—जीवन का उपयोग

शब्दार्थ—दुर्दिन = [illegible] में पड़ना। मदन = [illegible]। मनोभव = [illegible]। व्यथित = पीड़ित, दुखी। पद-दलित = दूसरों के पैरों तले रौंदे हुए। पराश्रित = दूसरों के आश्रय

तट पर की एक शिला पर बैठा हुआ चाद के मन को मोहित करने वाली शोभा को देख रहा था। उसी समय किसी के पैरों की सुन्दर आहट सुनाई पडी, जिस को सुन कर प्रतीक्षा मे बैठे हुए पथिक की हृदय रूपी कली शीघ्र हा खिल उठी (वह प्रसन्न हो गया) । ३।४॥

कुशमेखला विशुद्ध…

शब्दार्थ—कुशमेखला = कुशा घास की बनी हुई करधनी। अजिन कौपीन = मृगचर्म की कफनी। सत्तम = उत्तम। भस्मावृत्त = धूल से ढका हुआ । श्मश्रु = दाढी । निर्धूम = धुए से रहित । द्योतक = जतलाने वाला । सद्वृत्ति = सदाचार । चिकुर = बाल । प्रफुल्लित = प्रसन्न ।

भावार्थ—कुश की करधनी तथा शुद्ध चर्म के कौपीन (मृगछाला) को अपनी पतली कमर से कसे हुए एक महा तपस्वी सन्त धीरे धीरे चलते हुए वहां पर आ गये। उन का मुख भस्म से ढकी हुई धूमहीन अग्नि के समान दाढी से ढका हुआ था (लाल चेहरा था और उस पर सफेद दाढी थी) जो उन के अधिक प्रभाव, तपस्या, वैराग्य और उत्तम गुणो को प्रकट करता था । अथवा उनके हृदय मे जो एक निर्मल ज्योति विद्यमान थी वही मुखके सब ओर फैल रही थी। अथवा अपने शुद्ध आचार-विचार के बल से उनके बालो की कालिमा नष्ट हो गई थी (कालेपन की समानता पाप से होती है और धर्म सफेद माना जाता है) । ऋषि को देख कर पथिक ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर प्रणाम किया और कहा कि– "मै आज आपका पवित्र दर्शन कर के धन्य हू ॥५।६॥

इस नीरव स्तब्ध निशा में……

स्रोत, चश्मा। लतिका=बेल। अभिराम=सुन्दर। द्रुम=वृक्ष। निशीथ=आधी रात। वातायन=खिड़की। धवलता=सफेदी।

भावार्थ—आधी रात का समय था, आकाश निर्मल तथा मेघ-रहित था, दिशाएं शब्दरहित सुनसान थीं। आकाश के ऊपर एक विचित्र नगीना (रत्न) शोभायमान हो रहा था। उस नगीने(रत्न-चांद) की दीप्ति तालाब, झरनों, घास, बेल, वृक्ष-समूह तथा आधी रात के सुन्दर कमल में विश्राम कर रही थी। इस समय अनन्त (बहुत दूर) की किसी खिडकी से कोई दिव्य निर्मलता प्रकाशमान थी और पृथ्वीतल को मानो धो रही थी। जंगल का एक एक तिनका सुख की नींद में मस्त हो रहा था और केवल वायु का सुख देने वाला और शीतल प्रवाह 'सन सन' शब्द करता हुआ वह रहा था ॥१।२॥

या निर्भय कर्तव्य परायण······

शब्दार्थ—कर्तव्य परायण=कार्य तत्पर। प्रभावित=प्रभाव-युक्त। सिन्धु सन्तरी=समुद्र रूपी सिपाही। ऊर्मि=तरंग। अधर=होंठ। वीचि=तरंग। मरीचि=किरण। वसन=वस्त्र। चुम्बन=चूमना। जलधि तीरस्थ=समुद्र के किनारे पर होने वाली। द्रुत=शीघ्र। प्रतीक्षक=प्रतीक्षा करने वाला।

भावार्थ—अथवा इस समय केवल भयरहित, अपने कर्तव्य में तत्पर, बहादुर समुद्र रूपी सैनिक अपने प्रभाव-युक्त असंख्य तरंग रूपी होठों से गरज रहा था। समुद्र की चंचल तरंगें अपने नीले शरीर को किरण रूपी वस्त्र से सजा कर स्पर्धा करती हुई मानो सुन्दर चन्द्रमा को चूमने के लिए उछल रही थीं। (लहरें बहुत ऊंची उठती थीं और चन्द्रमा की किरणों से चमक रहीं थीं) इस अवसर पर प्रेम का व्रत धारण करने वाला एक यात्री समुद्र

ट पर पड़ी एक शिला पर बैठा हुआ चांद के मन को मोहित करने वाली शोभा को देख रहा था। इसी समय किसी के पैरों की सुन्दर आहट सुनाई पड़ी, जिस को सुन कर प्रतीक्षा में बैठे हुए पथिक की हृदय रूपी कली शीघ्र ही खिल उठी (वह प्रसन्न हो गया) । ३।४।।

कुशमेखला / शुद्ध ...

शब्दार्थ – कुशमेखला = कुशा घास की बनी हुई करधनी। अजिन कौपीन = मृगचर्म की कफनी। सत्तम = उत्तम। भस्मावृत्त = धूल से ढका हुआ। श्मश्रु = दाढ़ी। निर्धूम = धुएं से रहित। द्योतक = जतलाने वाला। सद्वृत्ति = सदाचार। चिकुर = बाल। प्रफुल्लित = प्रसन्न।

भावार्थ—कुश की करधनी तथा शुद्ध चर्म के कौपीन (मृगछाला) को अपनी पतली कमर से कसे हुए एक महा तपस्वी सन्त धीरे धीरे चलते हुए वहां पर आ गये। उन का मुख भस्म से ढकी हुई धूमहीन अग्नि के समान दाढ़ी से ढका हुआ था (लाल चेहरा था और उस पर सफेद दाढ़ी थी) जो उन के अधिक प्रभाव, तपस्या, वैराग्य और उत्तम गुणों को प्रकट करता था। अथवा उनके हृदय में जो एक निर्मल ज्योति विद्यमान थी वही मुख के सब ओर फैल रही थी। अथवा अपने शुद्ध आचार-विचार के बल से उनके बालों की कालिमा नष्ट हो गई थी (कालेपन की समानता पाप से होती है और धर्म सफेद माना जाता है)। ऋषि को देख कर पथिक ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर प्रणाम किया और कहा कि– "मैं आज आपका पवित्र दर्शन कर के धन्य हूं ।।५।६।।

इस नीरव स्तब्ध निशा में......

शब्दार्थ—नीरव = शब्दरहित । स्तब्ध = शान्त । हिमकर = चांद । चन्द्रिका-सिक्त = चांदनी से सींची हुई । प्रकृत = स्वभाव । सद्म = घर । भव = संसार ।

भावार्थ—इस शब्दरहित, शान्त रात के समय चांद की छाया (प्रकाश) में चान्दनी से सींचे हुए इस नील समुद्र की शोभा को देखता हुआ आप के दर्शन की उत्कण्ठामय इच्छा को हृदय में लिए हुए बैठा हूँ और अब मेरी व्याकुल आशा सफल हुई है। स्वभाव से ही प्रसन्न रहने वाले सन्त ने हंसते हुए कहा—हे प्रिय पुत्र, प्रेम रूपी मन्दिर से निकले हुए तुम्हारे यह वचन बहुत मधुर हैं। तुम सकुशल रहो और संसार में स्वार्थहीन प्रेम की ज्योति जगाओ, तथा मोह में भूले और भटकते हुए संसार को सुखकर मार्ग दिखाओ ॥७८॥

पृष्ठ ९३—प्रात ... सिन्धु में जागृत....

शब्दार्थ—जागृत थीं = उठती थीं । तुंग = ऊँची । सैकत = रेतीले । गृहिणी = घर वाली ।

भावार्थ—प्रभात के समय जब समुद्र में ऊँची ऊँची लहरें उठ रही थीं जैसे सज्जनों के मन में लोक सेवा की उमंगें उठती हैं, उस समय तुम इस रेतीले किनारे पर खड़े हो कर प्रभात की शोभा को देख कर मुग्ध हो रहे थे और जब तुम सम्पूर्ण संसार की विस्मृति में पड़ कर (सारे भाव भूल कर) एक अलौकिक अवस्था में जागृत थे, वहीं वृद्ध द्रुम पर खड़ा हुआ, मैं प्रात काल की बातों को सुन रहा था। तुम्हारे स्वच्छ हृदय की पवित्रता को मैंने उसी समय जान लिया था। धर्मपत्नी के साथ होने वाले तुम्हारे उस सा

विराट् (महत्व) को मैंने देखा और सब के प्रत्येक व्यापार में तुम्हारे पवित्र हृदय के चित्र को देखा।

मैंने जो कुछ तुम को दिया है उसे ध्यान में न लाना। आओ, बैठो और ध्यान से सुनो मैं तुम्हें एक रहस्य की बातें बतलाना चाहता हूँ। यह कह कर वह परम वैरागी मुनि एक शिला पर बैठ गए और उनका ध्यान करने वाला प्रेमी पथिक भी उनके सामने बैठ गया ॥[illegible]॥

पृष्ठ [illegible]—जिन [illegible] ...

भावार्थ—फिर मुनि के वचनों को सुनने के लिये अत्यन्त विनय भाव से तथा उत्कण्ठित मन से बैठा हुआ पथिक अपने श्रद्धा भरे नेत्रों से साधु की तरफ देखने लगा। मुनि ने कहा कि हे पुत्र। तुमने संसार छोड़ दिया है और प्रेम के आस्वाद को चखने के लिए इस वन में ठिकाना किया है। तुम मनुष्य हो और तुम्हारा जन्म अधिक बुद्धि, बल से शोभित है। क्या तुमने कभी विचार किया है कि इस संसार में कौन सा पदार्थ उद्देश्य हीन है?

इस बात को बुरा मत मानो जरा अपने मन में सोचो तो सही कि संसार में तुमने (मनुष्य जीवन के) कर्तव्यों को पूरा कर लिया है ॥१२।२३॥

पृष्ठ ८४—जिस पर गिर कर उदर दरी से ...

शब्दार्थ—उदरदरी = पेटरूपी गुफा। समीर = हवा। दृग = नेत्र। मही = भूमि।

भावार्थ—जिस पृथ्वी पर गिर कर (अर्थात्) ऊर्ध्व लोक स्वर्गादि से तुमने (माता की) उदर रूप गुफा से जन्म धारण किया है, जिस के अन्न को खा कर, अमृत के समान जल तथा वायु का सेवन किया है, जिस पर तुम खड़े हुये, खेले,

मकान बना कर रहे और सुख उठाया, जिस के रूप को देख कर तुम्हारे नेत्र, मन, तथा प्राण जीवित रहे, वह प्रेम की मूर्ति दया-युक्त माता के समान तुम्हारी जन्म-भूमि है। क्या उस के लिये तुम्हें जो करना उचित था वह तुम कर चुके? जिन्होंने हाथ पकड़ कर तुम को चलना सिखलाया जिन्होंने तुम को भाषा सिखा कर अपने हृदय का विचित्र रूप तथा स्वरूप (अनेक प्रकार का ज्ञान) दिखाया ॥ १४-१५ ॥

क्या उन का उपकार भार······

शब्दार्थ—लवलेश = जरासा भी। दावानल = जंगल की अग्नि। दारुण = घोर। निर्जन = एकान्त। स्वार्थविवस = अपने स्वार्थ साधन के अधीन ॥

भावार्थ—क्या उन का तुम पर जरा-सा भी उपकार का बोझ नहीं है? क्या उन के प्रति तुम्हारा कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं? हमेशा जलती हुई दुःख-रूपी दावाग्नि मे तथा संसार के घोर युद्ध मे उन को छोड़ कर तुम कायर बन कर एकान्त मे रहने के लिए भाग आये ॥ कष्टों को सुन कर ही तुम्हारा हृदय कांप गया, मनुष्यता के लिये तो यह शर्म तथा निन्दा की बात है। तुम शुद्ध-प्रेम के रहस्य एवं प्रेम की महिमा को जानते हो। तुम प्रेम के मार्ग पर यात्रा करने वाले और प्रेम की वेदना से घबराये हो ॥ तुम सिर्फ अपने ही (हित के) लिये सोचते हो और बड़े मज़े से गा रहे हो, जी रहे हो, खा रहे हो, सोते हो, और हँस कर सुख ले रहे हो। संसार के हित से परे अपने हित को सिद्ध करने मे ही तुम्हारी कीर्ति है, तुम विचारो तो सही जगत् मे तुम जैसा कौन स्वार्थ के अधीन दूसरा मनुष्य है? ॥ १६—१८ ।)

———o———

नीति के दोहे

शब्दार्थ—पटुता=चतुरता । द्वौ=दो । आकृति=शकल । लोचन=नेत्र । इंगित=आंखों के इशारे । चेष्टा=हाथ पांव की क्रिया । चाल=चलना फिरना । भवन=घर । सचिव=मन्त्री ।

भावार्थ—(१) विद्या, साहस, धैर्य, बल, चतुरता और आचार तथा विचार की पवित्रता ये ही बुद्धिमान के असली मित्र हैं ।

(२) सज्जनों का हृदय ऊपर से रूखा होता हुआ भी नारियल के समान अन्दर से रसयुक्त-दयालु होता है और दुष्टों का हृदय बेर के समान बाहर से कोमल और अन्दर से कठोर होता है ।

(३) आकार, नेत्र, वचन, मुख, इशारे, चेष्टा (क्रिया, हरकत) और चाल ये सभी मनुष्य के मन के भावों को प्रकट कर देते हैं ।

(४) हथियार, कपडा, भोजन, मकान और स्त्री ये सब नवीन ही सुख देने वाले होते हैं । किन्तु अन्न (चावल आदि), सेवक और मन्त्री पुराने ही भले होते हैं ।

—०—

कीच और कांच

पूर्व का आकाश उज्ज्वल—

शब्दार्थ—अंशुमाली=सूर्य । चराचर=स्थावर जंगम, जड चेतन सृष्टि । श्याम=काला । दृष्टि-पथ में=आंखों के सामने । चमचमाती=चमकती । आभा=प्रकाश, चमक । काच=सीसा ।

भावार्थ—आकाश का पूर्व भाग चमकदार तथा लाल था, क्योंकि यह सूर्य के उदय का समय था । जब सूर्य एक सुनहरे थाल की तरह उदय हुआ तब सारा जड-चेतन संसार प्रसन्न था । देखते ही देखते सूर्य की किरणें निकल कर चारों तरफ फैल गईं,

सामने से काला परदा (अन्धकार) हट गया और सभी वस्तुएँ जगत में दिखाई पड़ीं ॥ जब किरणों से निकल कर एक ज्योति हँसती सी और चमकती हुई सी कीचड़ पर आ पड़ी तो उस में कोई दीप्ति उत्पन्न न हुई, बस वह नीच कीचड़ मैला ही बना रहा ॥ परन्तु जब वही ज्योति शीशे के एक टुकड़े पर पड़ी तो वह तेज़ी से चमकने लगा और स्वयं प्रकाशमान् होकर किरणों से प्रकाश को खींचता हुआ वह कांच का टुकड़ा सूर्य के समान जगमगाने लगा (क्योंकि काच पर निर्मल होने के कारण सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है) ॥

काच और कीचड़ दोनों के लिए आकाश, सूर्य और उसकी किरणें वही की वही एक समान थीं परन्तु दोनों के गुण समान न हो कर एक दूसरे से बिल्कुल अलग अलग थे, इसी लिए उनकी दशा भी वैसी ही भिन्न-भिन्न हुई। ऐ भारत के प्यारे नवयुवक! तुम्हारी भी ठीक ऐसी ही अवस्था है । क्या तुम्हारा ध्यान इस ओर भी है कि संसार तुम्हारी ओर किस दृष्टि से देख रहा है। १—६ ॥

शीघ्र भारतवर्ष में होगा उदय—

शब्दार्थ—भानु=सूर्य । प्रतिभा=दीप्ति तथा बुद्धि ।

भावार्थ—भारत में अब शीघ्र ही क्षितिज (जहां पर आकाश और पृथ्वी मिले से मालूम पड़ते हैं) के पास उन्नति रूपी सूर्य का उदय होगा । ऐ भारत के नवयुवक ! क्या तुम उस उन्नति रूप ज्योति को लेकर चमकोगे ? क्या तुम्हें अपने हृदय की शक्ति पर विश्वास है ? (अर्थात् उन्नति प्राप्त करने पर क्या तुम अपने मानसिक बल से उस से लाभ उठाओगे ?)

तुम अपने हृदय को देखो कि वह कीचड है अथवा ज्योति तथा बुद्धि से पूर्ण स्वच्छ काच है? यह मैला ही रहेगा ? या चमकेगा ? याद रक्खो, तुम्हारी यही परीक्षा है। (कवि भारत के नवयुवकों को सचेत करता है कि उन्हे स्वतन्त्रता मिलने पर उसकी रक्षा करके अपने को काच की तरह संसार मे उज्जवल बनाना चाहिये, न कि कीचड के समान अपने दोषो को दूर न करके ज्यो के त्यों बने रहना चाहिए) ॥ ७।८॥
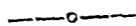
कौतूहल

किस की सुखनिद्रा का मधुमय—

शब्दार्थ—मधुमय = मीठा, सुन्दर । विशद = स्पष्ट, साफ । ललित = सुन्दर । समह = समूह । चपला = बिजली । विनोद = आनन्द । उषा = प्रभात कालीन प्रकाश । मञ्जु = सुंदर । प्रतिवासर = प्रतिदिन ।

भावार्थ—यह प्रकाशमान जगत् किस की सुखमय नींद के मधुर स्वप्न का भाग है ? यह जगत् सुन्दर खिलौनो का समूह सा कितना सुन्दर मालूम होता है ? यह बिजली किस प्रकार हँस हँस कर अपने प्रियतम मेघ के साथ आनन्द मना रही है ? यह उषा भी हर रोज सुन्दर शृंगार कर के किस के लिये आती है ? प्रात. काल में प्रति दिन मरकत रत्न के समान सुन्दर घास को सुन्दर मोतियो से भर कर के कौन किस की आवभगत के लिए खड़ा करता है ? (प्रातःकाल में हरे हरे घास पर ओस की बूँदें रहती हैं जो कि मोतियों के समान प्रतीत होती हैं ।)

पृष्ठ ६८—मैं जिस के निर्मल प्रकाश में……

शब्दार्थ—अतिक्रम = उल्लंघन। उच्छ्वास = लम्बी लम्बी साहें। आकर्षक = खींचने वाला। अभिनेता = मुख्य, चालक। दृश्य = जो देखा जाय, सृष्टि।

भावार्थ—जिस के निर्मल प्रकाश में मैं दिन और रात बिताता हूँ, उस प्रकाश का सहारा कहां विराजमान है? और बाहर (संसार में) यह छाया (माया) का भ्रम (मोह) किस का फैला हुआ है? जो मुझ में सुख तथा दुख की अनेक आहें उठती हैं उन का स्वाद (मज़ा) लेने वाला कौन है? और वह रसिक कहां रहता है? यह संसार क्या है? क्योंकर बना है? और यह चित्त को इतना क्यों अपनी ओर खींचता है? इस का कोई नायक है या नहीं? मैं कौन हूँ? यह दिखाई देने वाला जगत् हूं या इस को देखने वाला हूं?

(कवि सृष्टि की सब वस्तुओं पर तथा उन की क्रियाओं के रहस्य पर मोहित हुआ इस को एक तमाशे की तरह अनुभव करता है॥)

——०——

गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' त्रिशूल

जीवन परिचय

शुक्ल जी का जन्म श्रावण शुक्ला त्रयोदशी सम्वत् १६४० में पं० अवसेरीलाल जी के यहां हुआ था। बचपन में ही आप के पिता आप को छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये, अतः आप का पालन-पोषण आपके चचेरे भाई पं० ललिताप्रसाद जी ने किया। आप उन्नाव जिला के 'हड़हा' नामक ग्राम के रहने वाले हैं। वर्नेक्युलर फाइनल पास करने के बाद ही आप को कविता करने की रुचि होने लगी। आप की कविता भावपूर्ण और सरस होती है। करुण रस आप को अधिक प्रिय है।

आप सरल, सहिष्णु तथा स्नेही स्वभाव के व्यक्ति हैं। आप ने कृषक क्रन्दन, प्रेम पचीसी, कुसुमाञ्जलि इत्यादि पुस्तकें लिखी हैं।

सुशीलता

पृष्ठ १०१—लहि राज्य धराधिप आप हुए ....

शब्दार्थ=लहि=पा कर। धरा (राज्य) धिप=पृथ्वी के स्वामी। महिमध्य=पृथ्वी पर। भूरि=अधिक। शौर्य=वीरता। भील=जंगली शिकारी लोग। खर=गदहा। परिताप=दुःख। जगती=धरती।

भावार्थ—(यद्यपि कोई मनुष्य) राज्य पा कर स्वयं पृथ्वी पर अधिक प्रभाव वाला बन गया, गुणों को सीख कर बड़ा गुणवान हो गया, अधिक बलशाली बन गया, धन को जमा कर के कुबेर (के समान सम्पत्तिशाली) हो गया, वीरता और पुरुषार्थ पा कर शेर के समान बन गया, हृदय में धैर्य पैदा कर अति धैर्यवान हो गया, और बड़ी बड़ी वीरता के कार्यों को कर के

बहादुर बन गया, परन्तु यदि मनुष्य उत्तम शील स्वभाव वाला न बना तो कुछ न हुआ। (इनने सब गुण अच्छा स्वभाव न होने पर व्यर्थ हैं) वह मनुष्य एक वनमानुष, बन्दर तथा भील के समान ही रहा। मनुष्य हो कर भी वह गदहे के समान है। उस को जीवन मे नित्य दुख ही रहता है। वह पृथ्वी पर भार स्वरूप बन गया। यदि ऐसे लोग मन मे शील को धारण करते तो अपने जीवन के फल का स्वाद लेते। (भील इत्यादि बहादुर तो होते हैं, परन्तु सुशीलता न होने पर वे असभ्य ही कहे जाते हैं, अत. शीलरहित मनुष्य सम्पत्तिवान इत्यादि होने पर भी इन के ही समान होते हैं)॥

सदुपदेश

पृष्ठ १०२—बात सभारे व लिए

शब्दार्थ—सुठांव = उचित स्थान। कुठाव = अनुचित स्थान। हाथा-पांव = लड़ाई। सुधाधार = अमृत की धारा। हू = से। जनि = मत (नहीं)। कृतघ्न = उपकार न मानने वाला। बिज्जुलता = बिजली। सरङ्ग = रंग वाला। खैर = कत्था।

भावार्थ—(१) अच्छे तथा बुरे समय का विचार कर के और अपने वाक्य को संभल कर कहना चाहिए। क्योंकि उसी वाक्य को (भली प्रकार और ठीक समय पर) कहने से हाथी मिल जाता है और उसी को उल्टा विपरीत बोलने से हाथापाई (झगड़ा) हो जाता है।

(२) सज्जनों के उत्तम वाक्य तथा हाथियों के दांत एक बार (मुख से) निकलने पर फिर बदलते नहीं और अन्त तक रहते हैं।

(३) कृतघ्न (किए हुए उपकार को भूलने वाले) मनुष्य की

ऐसा करते [illegible] है, [illegible] मिल जाती है। यदि [illegible] [illegible] भी [illegible] फल नहीं देता।

(४) किसी की भी [illegible] पर विश्वास मत करो। देखो, क्या कभी बिजली का [illegible] (चमक) आकाश में स्थिर होता है? (किसी के [illegible] पर ही [illegible] भला आदमी नहीं मानना चाहिये और उस पर विश्वास भी [illegible] नहीं करना चाहिये, बिजली जो आकाश में चमक [illegible] है वही [illegible] पैदा करती है)।

(५) चार आदमियों के मिल मिल कर रहने पर ही आनन्द होता है, जैसे कत्था, चूना, सुपारी पान में मिल कर उस को सरस (रस वाला) बना देते हैं (समुदाय में शक्ति होती है)।

दीन-निहोरा

शब्दार्थ—निहोरा = विनति, प्रार्थना। मीन = मछली। दारिद्र्य = निर्धनता। लीन = मिला हुआ। रावरे = आप के। व्यथा = पीड़ा। कनकी = एक दाने की।

भावार्थ— हे कृपालु स्वामिन! समय के फेर में पड़ कर मैं दीन हो गया हूँ। मन का मैला, शरीर का क्षीण (कमजोर) और बहुत ही बलरहित हो चुका हूँ। जल से बिछुड़ कर गर्म रेत पर पड़ी हुई मछली के समान दुःखी हूँ। घोर दरिद्रता ने मुझे घेर लिया है और मैं उस में फँस चुका हूँ।

हे प्रभो! ऐसे समय में आपके सिवा मेरे लिये और कोई भी शरण-स्थान नहीं है। मैं जहां भी शरण के लिये जाता हूँ वहीं से "नहीं नहीं" की आवाज आती है।

पृष्ठ १०३—दीनबन्धु ! क्या व्यथा कहूं ……

हे कृपालु मैं अपने मन की पीड़ा कैसे कहूँ, क्योंकि बल और धन से रहित मनुष्य के लिये कहीं भी स्थान नहीं है। मेरी बराबरी तो सुदामा (जैसे निर्धन) के साथ भी नहीं हो सकती, क्योंकि वह तो चावल के दाने (भगवान् को) भेंट कर सके, परन्तु मैं तो एक दाना भी नहीं दे सकता। अब तो मेरे पास दीनता के सिवा और कुछ भी शेष न रहा। अतः हे दीन-बन्धो ! अब आप के बिना किसी की भी आशा नहीं है।

कृषक-दशा

भरा पूरा था भवन……

शब्दार्थ—कृषक = किसान। धन्धा = पेशा। उद्यम = व्यवसाय। रञ्ज = दुख। पेली = लगाई। मुचण्ड = मस्त। दुआ = प्रार्थना। जुआ = हल,धुरा (हल का वह भाग जो बैलों के कन्धों पर रहता है)।

भावार्थ—(कृषक कहता है एक समय था जब कि) मेरा घर धन-धान्य से भरा हुआ था, किसी भी वस्तु की कमी न थी। खेती के सिवा और कोई पेशा न था। दो तीन भैंसों से दूध मिला करता था। मै छोटा लड़का था। न मुझे कुछ दुःख था और न कोई चिन्ता थी। मेरे पिता जब मौजूद थे तो मेरा जीवन सफल (प्रसन्न) था। खेलना, कूदना, खाना, पीना बस यही मेरे काम थे।

मैं सौ सौ दण्ड लगा कर के मस्त जवान हो गया, उस समय मैं हमेशा अपनी खेती के लिये प्रार्थना करता था। जब बैल नहीं होते थे तो मैं स्वयं धुरा खींच लिया करता था और मैं फूफी

े कहता था कि देखो तुम्हारा ! मैं कितना बड़ा और बलवान् हो गया हूँ । मैं अपनी कथा सुनाऊँ, मेरी नस नस में उत्साह भरा था। मुझको देख देख के मेरा पिता भी प्रसन्न होता था।

[illegible]

शब्दार्थ—उन=वहाँ । दमड़ी=पाई । कूड़ामल=किसी बनिये का काल्पनिक नाम । आय=आमदनी । पत्यौरस=अनाज का (वर्ष) । काढ़ो=निकालो ।

भावार्थ—हाय ! अचानक ही समय ने पल्टा खाया । चूहे मरने लगे और घर में प्लेग फैल गई । पिता बीमार पड़ गये । मैंने दौड़ कर वैद्य को बुलाया परन्तु वे वहाँ न आये । दान-पुण्य मन्त्र-तन्त्र करने पर भी कोई प्रयत्न सफल न हुआ और पिता का देहान्त हो गया । हमारे पास एक दमड़ी तक न रही और हम अधमरे के समान हो गये ।

उन्हीं दिनों ला० कूड़ामल ने मुझे बुला कर कहा कि अपने पिता का हिसाब देख जाओ । मैं जब वहाँ गया तब लाला ने अपनी बही दिखलाते हुए कहा—

फसल का साल बीत गया, जो अनाज इस साल लिया गया, उसकी बाढ़ी अभी तक अदा नहीं की गई, इसलिये मैंने आज वह अनाज बाकी निकाला है ।

चरखे के गीत

चरखा चक्र सुदरशन मेरो ...

शब्दार्थ—सुदर्शन=सुदर्शन चक्र जो भगवान विष्णु के हाथ में रहता है । दैत्य=राक्षस । गुनवारो=गुणों वाला या गुण

(तागा, सूत्र) को धारण करने वाला। धुन = शब्द। मधुकर = भौंरा चेरो = सेवक या शिष्य। संगीन = लोहे का एक तिकोना, नुकीला अस्त्र। खप्यो = समाप्त हुई। खेरो = धार। तकुआ = चरखे में लगी हुई लोहे की वह सलाई जिस पर सूत लिपटता जाता है, तकला। हेरो = देखो।

भावार्थ—चरखा मेरा सुदर्शन चक्र है। ज्यों ही इस चरखे को चलाया जाता है त्यों ही दुख और निर्धनता रूपी राक्षस नष्ट हो जाते हैं। यह चरखा गुणों वाला है और गुन गुन शब्द करता है। इस के शब्द को सुन कर भौंरा इस का दास हो गया (इस पर मोहित होगया, अथवा इस से ही गुन गुन शब्द करना सीख कर वह इस का चेला बन गया)।

यह विजय की माला पहिन कर आया है, इस का घेरा बड़ा अच्छा मालूम देता है।

देखो तो सही इस चक्राकार चरखे के फेरों में तो संसार में संगीन भी दीन हो गया, तलवार की धार भी नष्ट हो गई तथा इसके तकले के सामने त्रिशूल भी मन्द हो गया। (हथियारों की आवश्यकता तो संसार में दूसरों को जीतने के लिये पड़ती है, परन्तु हम चरखे के बल से ही अपने शत्रुओं को वश कर रहे हैं।)

पहिले रह्यो त्रिगुन के ...

शब्दार्थ—कर = हाथ। उर = हृदय। आरत = दुखी। टेरौ = पुकारा। चीर = वस्त्र।

भावार्थ—पहले तो यह नारायण के हाथ में रहा, फिर सत्याग्रही गान्धी के हृदय में इस ने डेरा जमाया, परन्तु अब दुखी भारत की सेवा में लगा हुआ घर घर निवास कर रहा है। जब दुःशासन के दुष्ट व्यवहार को देख कर द्रौपदी ने इस (सुदर्शन चक्र रूप

गजेन्द्र) को पुकारा तो वह नग्न पाँव बचाने के लिये चला था और उस ने उस की विपदा को दूर किया था ॥

शुभ दिवस प्रतीक्षा

स्नेही कब फिर वे दिन ऐहैं……

शब्दार्थ—सनेही = ऐ प्रेमी ! (कवि अपने को संबोधन करता है)। कुटिला = टेढ़ी । प्रयाग = प्रयाग तीर्थ, त्रिवेणी । छीर = दूध । नीर = जल । बिलगैहैं = अलग करेंगे । काक पदवी = कौए की उपाधि । कलहंस = सुन्दर हंस । मानवीय = मनुष्य की । सिगरे = सभी ।

भावार्थ—ऐ सनेही ! वह दिन फिर कब आयेंगे जब कि हम (मानवीय) अपने बुरे कामों पर पछतायेंगे, और अपने मन को सीधा तथा साफ कर के प्रेम के प्रयाग में स्नान करेंगे ॥

कब हम अत्याचार और अनीति के तरीकों को छोड़ कर दूध तथा जल (गुणदोष) को अलग अलग करेंगे। कब काले तथा टेढ़ेपन से भरे कौओं की पदवी (गुणों) को छोड़ कर सुन्दर हंस कहलायेंगे ॥

रंग (काला या गोरा) भेद, जाति (हिंदू, मुसलमान आदि) भेद भरे विचारों के भ्रम में हम कब तक भूले रहेंगे ! कब हमारे मन में सब मनुष्यों को एक-सा समझने की बातें समायेंगी ! कब हम फिर एक ही विचार तथा एक ही भाषा (मातृभाषा) की प्रेम धारा बहायेंगे और सारे भारत को अपने माता पिता तथा बन्धुओं के समान अपनायेंगे ?

सत्याग्रह

पृष्ठ १०६—

सत्याग्रह=सच्चाई के लिये हठ करना अर्थात् अपने सत्यमार्ग पर अड़े रहना ॥

सत्य सृष्टि का सार''

शब्दार्थ—मोद = आनन्द। मकरन्द = पुष्प का रस। सौरभ= सुगन्ध। मिलिन्द = भौंरा। पशुबल = पाशविक अर्थात् शारीरिक शक्ति। मनकें = विचलित हो जाय।

भावार्थ—सत्य संसार का सार है, निर्बलों का बल है और नित्य रहने वाला एवं अचल अटल है। हे मित्र! जीवन-रूपी तालाब में यही सुंदर कमल है, आनन्द इस का मीठा रस और उत्तम तथा निर्मल यश इस की सुगन्धि है। मुनिजनों के मन-रूपी भौंरे इसी पर मचलते फिरते हैं और प्राण भी इसी पर बलिदान हो जाते हैं। जिस मनुष्य के दिल में सत्य का अविचल प्रेम भरा हो, जो आत्म बल को देखने में आनन्द प्राप्त करे, जो भौतिक तथा शारीरिक बल को तुच्छ समझ कर, तलवार को भूषण के समान जाने (तलवार से न डरे), जो गोलियों के सन सन शब्द (सुनने) पर चिमके नहीं, जिस के लिए जीवन में केवल प्रेम ही प्राणों का आधार हो, सत्य ही जिसके गले का हार हो और उस पर जिसको इतना प्रेम हो—१—२॥

इस पद में कह रही हो—

शब्दार्थ—मोहनी = लुभाने वाली (देवी)। भव = संसार। विप्लव = उपद्रव। रौले = शोर शराबे में। रौलट बिल = रौलट ऐक्ट जो कि १९१९ में पार्लियामेंट ने पास किया था और जिस के विरुद्ध सत्याग्रह का आन्दोलन बड़े जोर से हुआ था॥) अक्षत = न टूटने वाली।

खनरा, भय। भवजनित=संसार मे पैदा हुए।

भावार्थ—जिस व्यक्ति पर यह 'सत्याग्रह' वार करता है उस के आत्मा की शुद्धि हो जाती है परन्तु जो छल कपट करता है उस को युद्ध खा जाता है। (युद्ध कर के मरता है) इस में साहस की कितनी लचक है (अर्थात् जैसे कोई लचकीली चीज दबाव से दब जाती है उसी प्रकार इस में साहस या शक्ति के कारण झुकने का गुण विद्यमान है)। इस का किसी पर भार नहीं है क्योंकि यह वायु से भी हलका है। अनीति की नोक में इसकी बिजुली की जैसी चाल है (अर्थात् अनीति का बड़ी तेजी से विरोध करता है लोग दांतों मे अंगुली दबा कर (आश्चर्यमग्न हो कर) कहते हैं कि 'यह सत्याग्रह तो कमाल-ही है (अर्थात् यह सब से बड़ा है)॥

(सत्याग्रही को कवि कहता है) तुम सुकरात* होगे और तुम्हारे

* सुकरात का जन्म ईसा से ४६६ वर्ष पूर्व हुआ था। इन के जीवन में ४० वर्ष कोई विशेष घटना नहीं हुई। इस के बाद पोरिडिया के युद्ध में बहादुरी दिखाने के कारण इन का नाम प्रसिद्ध हुआ। इस के बाद इन्होंने तर्क-शास्त्र का अभ्यास किया और यूनान के सभी काव्य और दर्शन पढ डाले। इस से इन की तर्क शक्ति प्रबल हो गई और दार्शनिक इन से हार मानने लगे। धीरे-धीरे बहुत से लोग इन के विरुद्ध हो गये, जिस के फल-स्वरूप युवकों को बहका कर धर्म-नीति से भ्रष्ट करने का इन पर अभियोग लगाया गया और इन्हे इस के दण्ड स्वरूप विष पान करने के लिये कहा गया। ये महात्मा शांतिपूर्वक विष का प्याला पी गये और अन्तिम समय तक निश्चिन्तता से तर्क करते रहे।

(२) ईसा को वध स्थान पर लेजाते समय फांसी का दण्ड

विद्यार्थियों को सम्बोधन

—o—

शब्दार्थ—उपवन = बाग। कलेवर = शरीर। दुकूल = दुपट्टा। सतत — नित्य। शूल = कांटा, दुख। मधुमय = मीठे।

भावार्थ — हे भारत के विद्यार्थी। इस (भारत रूपी) बाग के तुम ही फूल हो, तुम्हारे बगैर हरे भरे स्थान में भी मानो धूल उड़ रही है। भारत की जनता रूपी कुञ्ज का शरीर सूना (नंगा) होता अगर तुम उस के दुपट्टा न होते (अर्थात् तुम भारत की रक्षा करने वाले और लाज रखने वाले हो)॥ हे प्रिय! तुम सदा यहां की ऋतु (परिस्थिति) के अनुसार ही अपने रंग और रूप को बना रखना। तुम अपनी मीठी और स्वाभाविक सुगन्धि से मन के दुख को दूर करना। तुम ग्रीष्म ऋतु की गर्मी और हेमन्त की सर्दी से योंही व्याकुल न हो जाना, अपितु निर्मल वसन्त की प्रतीक्षा करने में सब दुखो को भूल जाना (दुखो की परवाह न करके उन्नति की राह देखना)॥ तुम अपनी शक्ति से ऐसे फलो को (शुभ परिणामो) को पैदा करना जो मीठे और कल्याण करने वाले हो और जिन पर भारत अभिमान और हर्ष से फूल उठे। (ऐसे कार्य करना जिन से उत्तम परिणाम निकले और भारत का गौरव बढे)॥

—o—
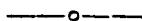
अन्योक्तियां

अन्योक्ति—फुटकर कविता, जिस में किसी प्रसंग या कथा का वर्णन न हो, किन्तु भिन्न भिन्न पदार्थों पर पृथक पृथक् कविता लिखी हो जिन से उपदेश की 'ध्वनी' निकलती हो।

[illegible] चन्द्र ! तुम संसार के [illegible] हो और शीतलता के प्रेम [illegible] हो। जब तुम अमृत की वर्षा कर सकते हो तो तुम [illegible] अपनी कालिमा को भी क्यों नहीं दूर करते? (अमृत से सब रोग [illegible] हैं और सभी दोष दूर होते हैं, यदि तुम अमृत से पूर्ण होते तो क्या अपने कलंक को दूर नहीं कर सकते थे?) ॥१॥

हे मित्र ! (सूर्य का नाम 'मित्र' भी है) तुम अपने बाल्य (उदय) काल में ही [illegible] पतित हो गये और फिर अपने आप मद पर और संसार के तथा पर मस्त हो गये, परन्तु दो दिन तक भी तुम्हारा एक सा रंग (वर्ण तथा अवस्था) न रहा। ज्यों ही शाम हुई कि अस्त हो गये। (सब दिन एक से नहीं रहते, सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख आता है अतः अपनी सम्पदा (कांति) पर किसी को अभिमान नहीं करना चाहिए) ॥२॥

हे आकाश ! तुम सब से बढ़कर फैले हुए हो, तुम इसी लोक में स्वर्ग के आदर्श (प्रतिबिम्ब) के समान हो। (क्योंकि स्वर्गादि लोक आकाश में ही हैं) परन्तु दोस्त ! विद्वान लोग यही कहते हैं कि तुम शून्य हो, अतः कुछ भी नहीं हो। (बाहर से घटाटोप फैलाने वाले अन्दर से खोखले ही होते हैं) ॥३॥

शब्दार्थ—उड़ी—फैलकर दूर निकली। पेंच—फेर, घुमाव या चालाकी।

भावार्थ—हे पतंग ! यदि तुम इस प्रकार उड़कर दूर न जाते और तुम्हारी डोर भी मजबूती से थमी होती और अगर तुम फेर लगा कर (या चातुरता से) उड़े होते तो कभी भी आपस में ही एक दूसरे से फंस कर नहीं कट जाते। (दृढ़ता, निपुणता

तथा विचार के बिना कार्य करने का यही परिणाम होता है) ॥४॥

शब्दार्थ—स्वार्थरत = खुदगरज़ । मन्दर = घर । श्वान = कुत्ता । वृक = भेड़िया । जन्तु = प्राणी ।

कुत्ता, भेडिया, बाघ, सिंह और चीते से अधिक भयंकर यह कैसा जन्तु है जिससे उसके भाई तक भयभीत रहते हैं और जो अत्यन्त स्वार्थी, दुष्ट एवं पापी है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—फारसी = फारिस देश की भाषा, फारसी । बूकते = जोर जोर से बोलते हो ।

भावार्थ—तुम फारसी की तरह क्या बकते हो, इस देश (भारत) के हो कर भी तुम (अपनी भाषा बोलने मे) क्यों चूकते हो ? तुम्हारी यह विलायती (समझ मे न आने वाली) बोली कौन समझेगा ? क्यों हमारे दिमाग़ खाते हो और क्यों भौंकते हो ? इस प्रकार लड़ाई झगडे न मचाओ, जो कुछ मिले उसे बांट कर खाओ । पर कुत्तों ने बिगडते हुए कहा कि अकेले ही डाल कर क्यों खाएँ ॥६-७॥

इस अग्नि का घमण्ड नष्ट होने दो और लकड़ी को टुकडे टुकडे हो जाने दो । जिस भांति यह तेज होनी चाहे होने दो, यह तो कुछ देर बाद आप ही जल कर राख बन जायगी । (जो अपने बल पर अति गर्व कर के दूसरों को कष्ट देता है वह नष्ट हो जाता है ॥८॥

कुछ न किया

पृष्ठ—१११शब्दार्थ— नाद = शब्द । सलिल=जल । तृषित=प्यासा । कर्मभूमि = पृथ्वी । पन्थ = रास्ता । कलुषों = बुरे कर्मों, पापों का ।

कि इस पृथ्वी पर उसने क्या किया ?

जिसने अपनी भुजाओं की शक्ति से शत्रु का सिर नहीं तोड़ दिया, उसका सारा बल वृथा है चाहे वह अधिक हो या कम। जिसने अपने अच्छे अच्छे मित्रों से स्नेह का सम्बन्ध नहीं बनाया अथवा जिसने अपना मतलब पूरा कर के फिर कपट से साथ छोड़ दिया, उस नीच तथा अन्धे ने अमृत को छोड़ कर छोटे ताल का जल (ताड़ी) पिया। भला आप ही कहिये कि इस पृथ्वी पर उसने क्या किया ?

रामचन्द्र शुक्ल

जीवन-परिचय

शुक्ल जी का जन्म आश्विन् पूर्णिमा सम्वत् १९४१ को वस्ती जिला के अगोना ग्राम मे हुआ था। इन के पिता का नाम पं० चन्द्रवली शुक्ल था। आप को बाल्य-काल से ही कविता करने में रुचि थी। आपने वर्नैक्युलर तक पढ़ा और उस के बाद गार्हिक कष्टों के कारण आप को अध्ययन छोड़ना पड़ा। १६ वर्ष की अवस्था में ही आपने 'मनोहर छटा' नामक कविता लिखी जो सरस्वती पत्रिका मे प्रकाशित हुई। उसके बाद आप ने कई कविताएं तथा लेख लिखे। आप काशी मे नागरी प्रचारिणी सभा में कार्य करते रहे। वहां आप 'हिन्दी शब्द सागर' नामक बृहत्कोष के सहायक लेखक रहे। आप हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में हिन्दी के अध्यापक रहे। इसी पद पर रहते हुए आप हाल ही में अनश्वर शरीर को छोड़ कर स्वर्ग को चले गये।

गुप्त जी हिन्दी भाषा के उच्च विद्वान, उत्कृष्ट समालोचक तथा कवि थे। इन्होंने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है उसके लिये हिन्दी-संसार इन का चिरकाल तक ऋणी रहेगा।

उद्बोधन

उद्बोधन—ज्ञान पैदा होना (अर्थात् गौतमबुद्ध को संसार की भिन्न भिन्न दुखकर घटनाओं को देख कर वैराग्य प्राप्त होना)

जाय दूत तब—

पृष्ठ ११६ शब्दार्थ—कालि = कल। डौंडी = घोषणा,मनादी। हाट = दुकानें, बाजार। बाट = मार्ग। अरुचिकर = सुन्दर न लगने वाला। पंगु = लंगड़े।

भावार्थ—उस के बाद दूत ने महाराजा शुद्धोदन के पास जाकर सारी बात कह सुनाई और कहा— हे महाराज! आप के पुत्र की बड़ी इच्छा है कि वह बाहर के प्राणियों को देख कर दिल बहलावे। उन्होंने मुझे कल दुपहर को रथ जोड कर लाने के लिये कहा है ॥ १ ॥ राजा विचार कर बोले कि हाय! अब तो वह समय (जब कि किसी ज्योतिषी ने कहा था कि राजकुमार वैराग्य धारण करेगा) आ गया है। अच्छा, आज नगर में घर घर यह मुनादी करा दो कि—सब बाजारों तथा मार्गों में सजावट हो और सब कुछ सुहावना मालूम पडे। अन्धे, लंगड़े, दुबले और बूढे आदमी घर से बाहर न निकलें ॥२॥

शब्दार्थ—झारी जात = झाड दिये जायँ। दधि = दही। दूर्वा = एक हरी घास (मांगलिक अवसरों पर इस घास को घरों में रखते हैं) रोचन = गोरोचन। बन्दनवार = वन्दनीमालायें। भीतिन =

दीवारों पर। केतु=झण्डे । प्रतिमा=मूर्ति । रुचिर=सुन्दर। अमरावती=इन्द्रपुरी।

भावार्थ—सब रास्ते साफ किये जायँ और उन पर प्रतिक्षण पानी का छिडकाव किया जाय। अच्छे घरों की नारियां दही, दूर्वा और गोरोचन को अपने द्वार पर रखें। प्रत्येक घर में सुन्दर रंग लगा कर वन्दनीमालायें बाँन्धी जाएँ। दीवारों पर जो चित्र थे वह भी सुन्दर और चिकने लगते थे॥३॥ वृक्षों पर अनेक रंग वाली झंडियां फहराती थीं। सब मन्दिरों में मनोहर शृंगार हुआ। सूर्य इत्यादि देवताओं की मूर्तियां भी सजाई गई । इस तरह वह नगरी अमरावती (इन्द्र की नगरी) के समान शोभित हो गई॥ ४॥..

पृष्ठ ११३—शब्दार्थ—चित्रित=विचित्र रंग वाले । चारु= सुन्दर। चपल=तेज। धवल=सफेद। तुरंग=घोड़ा । प्रखर= तेज़। रविकर=सूर्य की किरणें। उल्लास=आनन्द। अभिवादन= प्रणाम।

भावार्थ—सभी मकान सजाये गये, नगर में अत्यन्त शोभा छाई थी । एक सजे हुए सुन्दर रथ पर बैठकर राजकुमार (गौतम) निकला। उसमे तेज़ चाल वाले सफेद घोड़ो की नई जोडी जुती हुई थी । रथ का मण्डप (बैठने का स्थान) सूर्य की तेज किरणों से चमकने लगा। (क्योंकि मण्डप अनेक रत्नों से सजा था इसलिए उन में सूर्य की किरणें प्रतिबिम्बित होती थीं)॥ ५॥

सब नगर-निवासियो का आनन्द देखते ही बनता था। वे सब राजकुमार के पास आकर प्रणाम करते थे । उस अनन्त जन

[illegible] को देख कर [illegible] प्रसन्न होता। सब लोग इस तरह [illegible] थे मानो जीवन [illegible] का लाभ हो।

शब्दार्थ—भामिनी—[illegible]। केतु=[illegible]। जर्जर=शिथिल शरीर वाला। [illegible]—[illegible]। पञ्जर=शरीर की हड्डियों का ढांचा। [illegible]=मास। [illegible]—[illegible]। [illegible]=हरने के लिए। [illegible]=झुका हुआ।

भावार्थ—राजकुमार ने कहा कि मुझ को सभी लोग चाहते मालूम होते हैं। मेरी बातें [illegible] और [illegible] कार्य में तत्पर हैं। मैंने इन का कोई भी हित किया है यह मैं तनिक भी नहीं जानता ॥७॥ ऐ छन्दक ! तुम रथ को आगे ले चलो, मैं आज इस सुखपूर्ण नगर को—जिस का मुझे अभी तक ज्ञान नहीं था—ध्यान से देख लूं ॥ ८ ॥ परन्तु इसी समय एक झोंपड़ी से एक शिथिल शरीर वाला वृद्धा रास्ते में कांपते कांपते अपने पैरों को रखता हुआ आ निकला। उसने शरीर पर फटे हुए और मैले चिथड़े लपेटे हुए थे, उन की तरफ भूल कर भी किसी की दृष्टि न जाती थी (कोई भी उसे देखना पसन्द नहीं करता था) ॥९॥ उसकी त्वचा में झुर्रियां पड़ी हुई थीं जिस से वह एक सूखे हुए चमड़े की तरह दिखाई देती थी, उस की खाल उसके हड्डियों के ढांचे मात्र मांस की रहित शरीर से किसी तरह लटक रही थी। बहुत समय के भार से दबी हुई उस की पीठ भी झुकी हुई थी, आंखें अन्दर चली गई थीं जिन से नेत्र-मल और पानी की धारा बहती थी ॥१०॥ उस की दाढ़ (जबड़ा) हिल रही थी जिस में एक भी दांत न था। वह इतनी धूम-धाम तथा उत्साह को देख कर डर रहा था। उस ने अपनी हड्डियों की ही आकृति रखने वाले दुर्बल हाथ में अपने

शिथिल और बलरहित अंगों को टिकाने के लिये एक लाठी ली हुई थी ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—पसुरिन = पसलियां । पसारि = फैला कर । रुंधा = बन्द होगया । कहरि = पीड़ा के मारे 'आह आह' कर के । रिसाय = क्रोधित हो कर ।

भावार्थ—उसने अपना दूसरा हाथ पसलियों पर हृदय के पास रखा हुआ था, जहां से रुक रुक कर बहुत ही कष्ट से सांस आ रहा था । वह अपनी कमजोर आवाज से कह रहा था कि—'दाता की जय हो, हे दाता कुछ मुझे देदो, अब मरा जा रहा हूँ, अब तो दो दिन रहना है । ॥ १२ ॥ यह हाथ फैला कर खड़ा था और बलगम से उस का गला रुँधा (रुका) हुआ था । कठिन पीडा के मारे कराहते हुए उस ने फिर कहा 'कुछ हमे मिल जाय' । परन्तु लोगों ने उस को रास्ते से हटा कर क्रोधपूर्वक कहा—"यहां से भाग जाओ, यह देखते नहीं कि राजकुमार आ रहे हैं ॥१४॥"

शब्दार्थ—बूझत = मालूम करता । कर-संकेत = हाथ का इशारा । मनुज = मनुष्य । नतगात = झुके हुए शरीर वाला । सूधी = सीधी । दीठ = दृष्टि, नजर ।

भावार्थ—राजकुमार ने पुकार कर कहा 'हैं ! हैं ॥ इस को रहने क्यों नहीं देते हो' । फिर हाथ से इशारा करके उसने सारथी से पूछा कि यह आदमी कौन है ? देखने मे तो मनुष्य सा ही दिखाई पडता है । यह इतना बदशकल, दीन, मैला, कमजोर, डरावना सा और झुके हुए शरीर वाला (कुबडा सा) है ॥१४॥ क्या कभी ऐसे भी मनुष्य दुनिया मे पैदा होते हैं ? जो यह कहता है कि "मै दो-चार दिन हूँ" इस का क्या मतलब है ? क्या इस को

खाना नहीं मिलता, क्योंकि इसकी सिर्फ हड्डिया ही हड्डियां दीख पड़ती हैं। इस पर ऐसी कौन सी मुसीबत पड़ी हुई है? ॥१५॥ तब सारथी ने उत्तर दिया 'हे राजपुत्र! सुनो, यह एक बूढ़ा आदमी है और कुछ नहीं, इस को अपना जीवन अब भार सा है। चालीस साल पहले इसकी पीठ सीधी थी, सब अंग सुन्दर थे और नजर भी साफ थी ॥१६॥ राजकुमार ने पूछा—क्या सब की ऐसी ही दशा होती है या सौ मे एक आध ही कोई ऐसा मिलता है? छन्दक ने कहा—सब की यही दशा होती है अगर इतने दिनों तक संसार में कोई जीता रहे ॥१७॥

शैशव

शैशव=बालकपन।

पृष्ठ ११८—मृदुल-मानव-मन-मोहन मन्त्र—

शब्दार्थ—मृदुल=कोमल। मानव=मनुष्य। हृदय-हर्षक= हृदय को प्रसन्न करने वाला। कर्षक=खींचने वाला। परतन्त्र= अधीन। अनुरूप=समान। जालिका=जाल।

भावार्थ—हे बालक। तुम मनुष्यों के कोमल मन को मोहित करने वाले मन्त्र हो, तुम हृदय को प्रसन्न करने वाले और लोगों को खींचने वाले प्रिय तंत्र हो, तुम मीठे, कोमल आनन्द तथा सुख के यन्त्र (मशीन) हो, तुम किस को अपने वश में नहीं करते? संसार मे तुम्हारे समान कोई दूसरा नहीं मिलता। हे शिशु! तुम धन्य हो, तुम संसार में जीओ और विचरण

करो ।। तुम्हारा लुब्ध करने वाला सुन्दर रूप प्राणों के समान प्यारा लगता है और बड़े बडे राजाओं के भी प्रेम के दीपक हैं । तुम विचित्र शोभा, बुद्धि और रंग वाले हो, बस तुम्हारे समान सिर्फ तुम ही हो । (तुम से दूसरे की उपमा नहीं हो सकती तुम संसारिक झंझटों के जाल से पैदा होते हो (क्योंकि गृहस्थ आश्रम झंझट ही माना गया है) ।। हे शिशु !

मृदुल-मानव-मानस को·· ··।

शब्दार्थ—कौमुदी = चान्दनी । लोल = चञ्चल । नीरस = रसरहित । मुग्धक = मुग्ध करने वाला । लुब्धक = लुभाने वाला । भव्य = सुन्दर । अम्बुध = समुद्र । वृन्द = राशि, समूह । गण्य = गिनने के योग्य ।

भावार्थ—हे शिशु ! तुम्हारी तोतली बोली मनुष्य के कोमल मन को बिना मूल्य ही खरीद लेती है । आश्चर्य से भरी हुई सुन्दर चान्दनी के समान तुम्हारे खेलों की चंचल लहरें मन में उमंगें उत्पन्न कर देती हैं । नीरस पुरुषों के मन को भी मोहित करने वाले तथा लुभाने वाले तुम धन्य हो ।। हे शिशु !······

तुम मे दूसरो को आकर्षित करने की शक्ति भरी हुई है । सुन्दर और सरल विचारों से तुम्हें प्रेम है । संसार की विचित्रताओं (निराली बातो) के अपार सागर से (अर्थात् सांसारिक भावों से परे अनेक विचित्र व्यवहारों से) तुम्हे अनुराग है । तुम्हारे चरित्र जिस को न लुभायें वह कौन सा व्यक्ति है ? (अर्थात् ऐसा कोई नहीं है) तुम संसार की अद्भुत वस्तुओ में गिने जाने योग्य हो । हे शिशु ···।

कलित कुंचित कल ····

शब्दार्थ—फलित = सजाये हुए। कुंचित = घुँघराले। कपोल = गाल। देश = स्थान। अधर = होठ। अरुण = लाल। मधुरेश = मीठे। वशीकर = वश में करने वाला। विनोदक = प्रसन्न करने वाला। प्राकृतिक = स्वाभाविक। पयन् = पवित्र। पर्जन्य = मेघ। असवन्य = दुखित।

भावार्थ—तुम्हारे काले घुँघराले बाल सुंदर और सजे हुए हैं। तुम्हारे गाल कमल के समान कोमल हैं, तुम्हारे होठ कोमल, अत्यन्त मधुर और लालिमा को लिये हुए हैं। तुम्हारा स्वच्छ और प्रसन्न करने वाला वेश दूसरों को अपने वश में करने वाला है, तुम स्वाभाविक और पवित्र प्रेम की वर्षा करने वाले मेघ हो। हे शिशु ·।

तुम्हें देख कर हमें अपने बचपन के सुख की याद आती है। वही सुन्दर खेल, मौजी गाने, तथा अन्त में आश्चर्य की बातों से चञ्चल हुए गाल, आहा! मैं दुखी हुआ अब उसी बाल्य काल को फिर चाहता हूं। हे शिशु ··।

मृदुल-मृदु-मञ्जुल-मुख मुस्कान ·····

शब्दार्थ—मञ्जुल = मनोहर।' मौनतामयी = शांतिपूर्ण। मनोज = कामदेव। सरलता = सीधापन। सार-सना = तत्व से भरा हुआ। कारुणिक = दयामय। कलक = बेचैनी। तलक = तक, पर्यन्त। किलक = शब्द। ललक = प्रबल अभिलाषा। उपमन्य = उपमा देने योग्य। वैमुखीवृत्ति = नाराज होने की आदत।

भावार्थ—तुम्हारे मधुर, कोमल तथा सुन्दर मुख की मुस्कराहट तो मौन धारण किये हुए कामदेव के समान है, जिस का कोई

अनुमान (अन्दाज) भी नहीं कर सकता ,और जिस पर शरीर, धन तथा प्राण भी न्यौछावर हैं। तुम्हारी सुजनता सरलता के मूल तत्वों से भर पूर है। उस में दुनियावी दिखावट की झलक, कठोर, दयनीय दुखों की बेचैनी और मलिनता तथा चिन्ता की रेखा तक नहीं होती; केवल मात्र आनन्द प्रकट करने वाले शब्दों की उत्कट इच्छा होती है। हे शिशो! क्या तेरा यह जीवन उदाहरणीय नहीं? हे शिशु! .....।

तुम्हारी सुंदर चपलता मन को चुराती है। तुम्हारी भोली दृष्टि और हँस कर रूठ जाने की आदत पर शरीर, मन तथा धन को न्यौछावर किया जाता है, तुम सुन्दरता एवं कोमलता में अपना सानी (बराबर करने वाला) नहीं रखते। हे बालक! तुम जीते जागते रहो, तुम सचमुच धन्य हो॥

अछूत की आह

पृष्ठ १२१—एक दिन हम भी किसी के लाल थे... ..

शब्दार्थ—तारे=पुतलियां। निर्जला=जलरहित। कीट=कीडा। नीचतर=बहुत अधम। पूत=पवित्र। घृणा=नफरत। दण्ड्य=दण्ड देने के योग्य। व्यवस्था=नियम। छूत=छुए जाने वाले, हिन्दू। मज्जा=चर्बी। अपावन=अपवित्र।

(१) एक दिन हम भी किसी के लाडले (प्रिय) थे, और कभी किसी की आँख के तारे थे। तब हमारा बूँद भर पसीना गिरता देख कर कोई घडों खून बहा देता था।

(२) अनेक देवी देवताओं की पूजा करके, कई निर्जला एकादशियो के दिन बिना पानी पिये रह कर और कई तीर्थों पर ब्राह्मणों

को दान दे कर तब कहीं माँ ने हमें गर्भ में पाया था।

(३) जिस दिन हमारा जन्म हुआ था उस दिन फूल (एक प्रकार की धातु, जिस की कटोरी, गिलास, थाली आदि बनती हैं) की थाली बजी थी। माँ के दुःख की रातें कट गईं और सुख का दिन निकल आया था। प्यार से हमारा मुख चूम कर माता-पिता स्वर्ग के समान सुख पाने लगे।

(४) हाय, हमने भी अच्छे कुल वालों की तरह ही जन्म पाया और बड़े प्यार से पाले गये। अब जी गये हैं और फूले-फले—बढ़े हुए हैं, किन्तु क्या हुआ जब हम कीड़ों से भी तुच्छ माने गये।

(५) हमने पवित्र भारतवर्ष में जन्म पाया, यहीं का अन्न, खाया और जल पिया। हमें हिन्दू धर्म पर अभिमान है और हम सदा भगवान् का नाम लेते हैं।

(६) परन्तु इस संसार का व्यवहार बड़ा विचित्र है। अब ससार से न्याय तो चला ही गया है। जिन्हें कुत्ते (श्वान) छूना भी स्वीकार है उन्हें ही हम अभागों से घृणा है।

(७) जिस गली से ऊँचे कुल वाले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य चलते हैं उस ओर चलना भी हमारे लिए दण्डनीय है। (यह प्रथा मद्रास-दक्षिण भारत-में है।) क्या धर्मग्रन्थों की यही व्यवस्था (नियम) है अथवा किसी कुलीन का यह पाखण्ड—ढोंग है।

(८) हे नाथ! यह कैसा विचित्र न्याय है कि यदि हम अपने प्यारे पुराने धर्म को छोड़ कर आज मुसलमान या ईसाई बन जायँ तो सब हम को खुशी-खुशी छूने लगते हैं।

(९) हम अछूतों से छू जाने पर ये छूत मानते हैं, आप चाहे कैसा ही काम करें पर अपने-आप को हमेशा पवित्र समझते

हैं। ये अपनों को पराया समझते हैं। हे प्रभो! क्या तुम्हा यही (हम से छूत मानने वाले) दूत हैं?

(१०) ये सरकार से अधिकार मांगते हैं, परन्तु अपना अन्याय नहीं छोड़ते। प्यार का पुराना सम्बन्ध तोड़ कर हम से नया निराला सम्बन्ध जोड़ते हैं।

(११) हे स्वामिन्! तुमने हीं हमे पैदा किया है, तुमने ही हमे रक्त (खून), मज्जा (चर्बी) और मांस दिया है। फिर हमें ज्ञान दे कर मनुष्य बनाया। (इतने पर भी) हमे ऐसा अपवित्र क्यों कर दिया?

(१२) हे कृपा-सागर! यदि तुम्हें कुछ दया आवे तो अछूतों की उमडती हुई आह का भारत मे यह असर होवे कि यहा परस्पर प्रेमके पैर जम जाये॥

शिशिर-पथिक

पृष्ठ १२३—विकल पीड़ित—

शब्दार्थ—विकल = दुखी। पयान = चलना। नलिनीदल = कमलों के पत्र। भानु = सूर्य। मेदनी = पृथ्वी। विहग = पत्ती। स्वन = शब्द।

भावार्थ—प्रियतम को जाते हुए देख कर दुखी तथा व्याकुल बने हुए जो कमल चारों ओर से उसे घेरे हुए थे उन को प्रेम से अपनी बाहे (किरणें) भेंट करके (लिपट कर) सूर्य भी जाने के लिये तैय्यार दिखाई पडता है (अस्त होने वाला है)॥ सूर्य शिशिर (पौष व माघ) ऋतु की सर्दी से भयभीत हुई पृथ्वी से मुंह मोड कर शीघ्र ही चल पड़े। पत्ती दुखी होकर टेरते ही

६ गये परन्तु उन्होंने एक भी नहीं सुनी ।

३—४ शब्दार्थ—तनि गये=फैल गये । सित=सफेद । अनिल=वायु । धरा=जमीन । लुकन=छिपने । विवर=सुराख, बिल । जुग=दोनों । अहीर=ग्वाला । तान=राग ।

भावार्थ—सफेद ओस की बून्दें वितान (चन्दोवा) की तरह फैल गई । हवा के झोंकों से पृथ्वी की मानो झाड़ू से सफाई हो गई । लोग मकानों के अन्दर छिपने लगे जिस तरह कि कीड़े और पतंग अपने अपने बिलों मे छिप जाते हैं ॥ यह देखो ! दोनों भुजाओं से छाती को दबाए हुए गायों को फिरा कर यह ग्वाला आ रहा है । यह कम्बल के अन्दर भी काँप रहा है और इस के वह सारे राग (जिन्हे यह दिन मे गायें चराते हुए गाता था इस समय चक्कर मे पड़कर भूल गये हैं (अर्थात् सर्दी के मारे जड़ सा हो गया है) ॥

५—६ शब्दार्थ—तम=अन्धकार । कारिख=सियाही । निर्जन=एकान्त । घाट=घाटियां । अरु=और । बाट=मार्ग ।

भावार्थ—अन्धकार ने चारों ओर सियाही फेर करके प्रकृति के सभी रूपों को धुँधला बना दिया है । सर्दी के प्रभाव से अब सभी घाटियां तथा रास्ते बिल्कुल जनरहित हो गये हैं (अर्थात् उन पर अब कोई मनुष्य नहीं चलता)॥ परन्तु वह कौन घोर हठवाला हठ करके आ रहा है । जब तक कोई भला आदमी पूछने वाला न मिले तब तक तो हम चुप ही रहें ॥

७—८ शब्दार्थ—गात=शरीर । विराम=विश्राम । स्वान=कुत्ते । रव=शब्द । भूँकि=भौंक कर । कपाट=किवाड़ । पथिक=यात्री ।

भावार्थ—उस पथिक का शरीर ढीला पड़ गया है। चाल धीमी हो गई है। वह आराम करने के लिए चारों ओर किसी जगह को खोज रहा है। उसने कुछ दूरी पर धुँआं उठते हुए देखा। यहां पर कुत्ते भौंक रहे थे। वह ठिठुरता हुआ उसी समय एक द्वार पर आकर खड़ा हो गया जहां किवाड़ें मजबूती से बन्द थे। उसने सुना 'तुम कौन हो?' तब पथिक ने कहा "मैं एक दीन यात्री हूँ और दया चाहता हूँ॥"

९-१०—खुलि गये झट द्वार—

शब्दार्थ—धुनि = शब्द। गेह = घर। वेगि = जल्दी। विहाय = छोड़ कर। भौन = भवन घर। आवन आयसु = आने की आज्ञा। विघातिनी = नष्ट करने वाली। दीर्घशिखा = लम्बी ज्वाला॥

भावार्थ—इतने में झट धड़ाक से दरवाजा खुल गया और पथिक के कानों में यह मधुर शब्द पड़ा - हे पथिक! तुम संकोच छोड कर के झट पट इस घर मे आ जाओ। तब पथिक ने भीतर आने की आज्ञा पा कर घर के अन्दर पैर रखे। उस घर मे आग की लम्बी लम्बी ज्वालाएँ घोर शीत के प्रभाव को नष्ट कर रही थीं (मकान गर्म था)।

११-१२ शब्दार्थ—चपल = चञ्चल। दीठि = दृष्टि, नजर। वय = आयु। पराजित = हारा हुआ। सुता = लड़की। कृशांगिनी = क्षीण अंगो वाली। मृणाल = कमल-नाल।

भावार्थ = पथिक की चञ्चल दृष्टि चारों तरफ फिर कर मकान के एक कोने में पहुंची। वहां पर जीवन रूपी युद्ध मे अपने दिनो को गिनता हुआ तथा आयु से हारा हुआ (अर्थात् वृद्ध) एक

उसकी पड़ा रक्खा था। उस वृद्ध के सिर के पास उस की लड़की अपने मन को वश कर के शील तथा प्रेम से अपने पिता की सेवा कर रही थी। वह पीले अंगों वाली झुक कर खड़ी हुई वहां इस तरह शोभित हो रही थी जैसे पाला से रहित मृणालिनी हो। (कमल की डण्डी सफेद तथा सिकुड़ी हुई सी रहती है, उसी तरह वह गोरे अंगों वाली युवती भी प्रिय विरह से म्लान हो गई थी।)

१३-१४ शब्दार्थ=दिसि=तरफ। आवनहार=आया हुआ, अतिथि। इंगित=इशारा। असीस=आशीर्वाद। सिगरी=सभी। आनन=मुख। बावरे=पागल। वकठि=सूखी। लावई=लाती है।

भावार्थ—पथिक को आया हुआ देख कर वह उस की ओर फिरी। उसने इशारे से उसको स्वच्छ आसन दिया। तब अतिथि ने बैठ कर उस को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी सभी आशाएँ फलित हों। युवती ने मुख को ऊपर करके करुणापूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा—ऐ भोले पथिक! सुनो, क्या कभी सूखी हुई बेल भी फल देती है?

१५-१६ शब्दार्थ—वास=डन्टी। सरुचि=प्रसन्नता के साथ। पितृनिर्देश=पिता की आज्ञा। पथ-तीर=मार्ग।

भावार्थ=जब मैंने दैव की गति प्रतिकूल देखी तब संसार के सुखों से मुंह मोड़ कर, पिता की आज्ञा का पालन और अतिथि की सेवा यह दो व्रत स्वीकार कर लिये। अब तुम अपना परिचय कहो: कहां से यहां आये और कहां जाओगे? तुमने मन के किस वेग से विचलित हो कर इस मार्ग पर अधीरता के साथ पग रक्खा है।

१७-१८ शब्दार्थ—सलिल=जल। बाट=रास्ता। धावते=

दौड़ते हैं। श्रवणद्वार = कर्ण, कान। आहट = खटका।

भावार्थ—आशा के जल से नित्य सींच कर जो अपनी शरीर रूपी लता को धारण करती है, ऐ पथिक, क्या इस तरह बैठ कर के कोई युवती तुम्हारी बाट जोहती है? क्या तुम्हें देखने के लिये मार्ग की ओर किसी के नेत्र दौड़ते हैं? ऐ (मुसाफिर)! तुम्हारी आहट (पदध्वनि) को सुनने के लिये किसी के कान सदा खुले तो नहीं रहते? (कोई तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में तो नहीं रहता?)।

१६-२० शब्दार्थ—निकटता = समीपता। मोदप्रदायिनी = आनन्द देने वाली। बदाबदी = स्पर्धा, शर्त। सुमन = फूल। निरंकुश = निठुर।

भावार्थ—कहो, कहीं पर तुम्हारे आगमन को जान कर आनन्द देने वाली तुम्हारी समीपता को दूसरे से पहले पाने के लिये पैर और नेत्रो मे बाजी तो नहीं लगती? दया कर के फूलों जैसा सुन्दर जाल बिछा कर भ्रम जो सुख देता है, यह कठोर, दया-रहित काल क्षण में ही उस (सुख) को दूर करके छीन लेता है।

२१-२२ शब्दार्थ—अचल = चेष्टा रहित। वदन = मुख। यथार्थ = सत्य।

भावार्थ—इन प्रश्नों के बोझ से पथिक दब गया, वह दुखी, मलिन तथा थका हुआ था, वह एक क्षण के लिए मूर्त्ति के समान जड सा हो गया और उसके शरीर तथा मन की सभी चेष्टाएँ रुक गई। (भौंचक्का सा रह गया)। मुख को (उत्तर देने में) असमर्थ जान कर के उस ने आखों मे आए हुए आँसुओं से ही उत्तर देते हुए कहा—सासारिक तुच्छ भावो से ऊपर रहने वाली हे दयालु देवि! तुम्हारा सारा अनुमान (अन्दाजा) सच है।

[illegible]—२४ शब्दार्थ—[illegible] । पसारि=फैलाकर । [illegible]=[illegible], तरफ । [illegible] —[illegible] । [illegible]=बिताते रहे । [illegible] ॥

भावार्थ—जब पथिक को [illegible] अपनी तरफ [illegible] देखते हुए देख कर [illegible] पवित्र एवं दया [illegible] की धारणा करने वाली [illegible] अपने ही आप यों कहने लगी—इस में कुछ बुराई नहीं जान पड़ती, और न आश्चर्य की कोई बात ही है । क्योंकि जो दुख से अपने दिनों को बिताते हैं, उनको अपने मार्ग में सब (वस्तुये) नई ही दीखती हैं ॥

२५—२६—शब्दार्थ—उसास=लम्बा सांस । वचनावली=वाक्यों की पंक्ति, शब्द । अवनि=पृथ्वी । लपटात=चिपटी हुई ।

भावार्थ—वह दोनों कुछ समय तक चुप रहे । फिर पथिक ने ऊपर की तरफ नजर उठाकर एक लम्बी, गहरी सांस ली और फिर उस के मुख से यह शब्द निकल पड़े—इंग्लैंड के सब देश विदेशो में भ्रमण करते हुए मेरे सारे दिन बीत गये । मेरे पैरों में मिश्र, काबुल, चीन तथा हेरात की धूल चिपटी हुई है ॥

२७—२८—भावार्थ—दूसरे की अवस्था और मन को जानने वाली तू ही अकेली मुझे पृथ्वी पर दिखाई पड़ी । तुम परख कर के पूछती हो और जो मेरे शरीर पर बीती है उस को तो मैंने सच सच ही सुना दिया ॥ जब मुझे दुख की वह घड़ियां याद आती हैं जिन्होंने मेरा जीवन ही संसार से बदल दिया ॥ चालाक मेजर (फौज का एक अफसर) के मन्त्र (राय)

को मान करके मैंने अपना सारा जीवन स्वप्न बना दिया (सुखहीन बना दिया) ॥ हित और प्रेम से भरे उन मधुर वचनो से जब मैंने अपने कानो को फेर लिया अर्थात् उन पर ध्यान नहीं दिया तब अपने बन्धु, अपना देश तथा अपने स्वरूप (अवस्था) को मैंने इन आंखों से ओझल कर लिया। (अर्थात् मैंने अपने देश तथा बन्धुओं को स्वयं ही मेजर की राय मान कर छोड दिया और दूर देश मे जाकर युद्ध करता रहा।)

३०—३१—शब्दार्थ—बोल=शब्द। रैन=रात। कराल=भयानक। भामिनि=स्त्री। प्रयास=कष्ट।

भावार्थ—पकडो, मारो, सिर काटो, बस यही शब्द मुझे अ भी सुनाई पडते हैं और रात दिन अफगानों की अत्यन्त भयानक तलवार सिर पर खड़ी रहती है (वह मुझे मारने प्रयत्न मे हैं)। मेरी भोली भाली स्त्री का मन आशा के बन्ध मे अवश्य ही विद्यमान है। उस को मेरे मिलने की आशा ने दूसरे लोक (स्वर्ग) पधारने से रोक रक्खा है। (उसे को मेरे मिलने की अब भी आशा है और इसी आशा के बन्धन से वह अपने प्राणों को धारण कर रही होगी)।

३२—३४—शब्दार्थ—विधु=चन्द्रमा। सुवन=पुत्र। कढत=निकलते। बैनन=वचन। अँचल=कपड़ा। मुरिपरी=लोट गई। महि=जमीन।

भावार्थ—इधर ही कहीं एक "पनन" गांव है जहां चन्द्रवंश से सम्बन्ध रखने वालो की घनी आबादी है। वहां विक्रमसिंह नाम के जो व्यक्ति रहते थे मैं उन्हीं का पुत्र 'रणवीर' हूँ।

पथिक के मुख से इन वचनों के निकलते ही वहां पर

[illegible] ही कुछ देर (ठहर) कर गया । यह सुनती अपने [illegible] को अपने [illegible] बीच में [illegible] हुई [illegible] जमीन पर गिर पड़ी ॥ [illegible] आदमी ने [illegible] किया, उसने उठ कर [illegible] से जमीन पर पैर रखा और [illegible] की ओर से देखते हुए [illegible] जाने लगा कि [illegible] 'फिर कहाँ' ॥

३४—शब्दार्थ—[illegible] = सहज ही में । पुरवै=पूरी करता है । [illegible] = को ।

भावार्थ—परमात्मा की लीला ऐसी है कि वह बहुत दिनों से लगी हुई आशा को भी सहज ही में पूरा कर देता है । उस जगदीश्वर के रहस्य को कौन पाता है ? देखो स्त्री ने अपने उत्तम [illegible] के फल को बीच में ही पा लिया, उस का प्यारा पति प्रेम के मार्ग से भटक करके फिर वापिस चला आया ॥

—o—
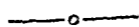
बदरीनाथ 'भट्ट'

जीवन-परिचय

भट्ट जी आगरा जिला के गोकुलपुरा में उत्पन्न हुए । आप के पिता का नाम पं० रामेश्वर भट्ट था । यह हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान् थे । भट्ट जी ने बी० ए० पास करके हिन्दी-साहित्य की सेवा करनी प्रारम्भ की । आप लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक का कार्य करते रहे ।

भट्ट जी ने कई नाटक लिखे हैं । इनमें से चन्द्रगुप्त, तुलसीदास, [illegible]चरित्र तथा दुर्गावती नाटकों ने हिन्दी संसार में काफी ख्याति प्राप्त की है । भट्ट जी की भाषा सुन्दर है और भाव भी उच्च हैं ।

प्रार्थना

पृष्ठ१३२शब्दार्थ—मग = रास्ता। विपिन = जंगल। सघन = घना। सुमन = अच्छे मन रूपी फूल। कलह = लड़ाई। ढलकाई = डाली। कतराई = बच कर निकल गई। विस्तारें = फैलावें। गुंजारें = गूंज उठे।

भावार्थ—हे असहायों के सहायक! हम आपकी शरण में आए हैं। हम रास्ता भूल गये हैं, जंगल घना है और गहरा अन्धकार छाया हुआ है। स्वार्थ की ऐसी हवा चली कि उसने सभी स्वच्छ मन रूपी फूल विखरा दिये। उत्तम विचार-रूपी सुगन्धि चुरा ली, स्नेह के दीपक वुझा दिये। लड़ाई रूपी कांटों से हमें छेद डाला और सारा सुख का रस सुखा दिया। भाईचारे के सम्बन्ध तोड़ दिये और अपने जनों को ही गैर वना दिया। आकाश ने भी हमारी दुर्दशा को देख कर ओस की बून्दों के रूप में आँसू वहा दिये, परन्तु वह बूंदें भी हमारे ऊपर पड़ कर फूट गई और इधर उधर हो कर वह गई। हे दया-सागर! तुम्हारा ही हमें सहारा है और तुम ही हमारे रक्षक हो। हाय!!! हम दीन वन कर अनाथ हो गये हैं। तुम ही दुखों को हरने वाले हो। हे देव! अपनी दया का ऐसा प्रकाश दिखा दो जिस से हम अपनी हालत को सुधार सकें, आत्म-त्याग का रास्ता पकडे और देश के प्रेम को हृदय में धारण करें। जाति के संगठन को फैलावें, आपस का भेद और वैर भूल जावें। भारत माता की जयकार वोले जिस से जल, थल और आकाश गूंज उठें। अशरणों के शरण! हम आप की शरण मे आये हैं।

प्रातः कालीन तारों के प्रति

पृष्ठ १३४ [illegible]—नाक [illegible]=सिलसिला बिगड़ना । [illegible]=चमकाते । [illegible]=[illegible] जाते । बान=आदत । घृणा=[illegible] ।

भावार्थ—हे तारो ! तुम हमको किस लिये चिढ़ाते हो, तुम्हारा भी (आकाश में दिखने रहने का) सब सिलसिला बिगड़ गया है । तुम जिस जिस तरह हमारी ओर देखते हो और आंखें मटकाते हुए नहीं थकते, पर तुम दो चार मिनट में ही पलक मारते मारते अन्तर्धान हो जाओगे । तुम अपने आपको अधिक सुखी मानते हो इसलिये मन से उलझते हो, झगड़ते हो । तुम अपनी आदत नहीं छोड़ते । अच्छी बात है तुम अपने आप को मत सुधारो (यह तारों के प्रति ताना कसना है जिस का व्यङ्ग्यार्थ है कि तुम को अपना सुधार करना चाहिये) । तुम फिजूल सब से नफ़रत करते हो । तुम औरों के सुख को क्यों छीनते हो ? यह संसार किस का है ? इस बात को तनिक भी मन में नहीं सोचते हो । १—४

भावार्थ—तुम आकाश में स्थित हो, सब से ऊंचे चढ़ बैठे हो, और सभी बातों में बढ़ कर हो, परन्तु फिर भी तुम जरा भी उदार नहीं हुए हो । जिस परमात्मा ने तुम को बनाया उसी ने यह संसार प्रकट किया है और हम को भी उसी ने पैदा किया है तो फिर तुम कैसे सरदार (मालिक) बन बैठे हो ? सूर्य की ठोकर खा कर फिर पीछे तुम पछताओगे (सूर्य के उदय होने पर तुम लुप्त हो जाओगे) हे दोस्त ! तुम हम को क्यों चिढ़ाते हो ? । ५—७

जीवन्मुक्त-पंचक

पृष्ठ १३५ शब्दार्थ—ललाम=सुन्दर । व्याप्त=समाया । अनल=अग्नि । अनिल=वायु । बीज=मूलकारण । स्वच्छन्द= स्वतन्त्र । आदित्य=सूर्य । व्योम=आकाश । अक्षर=नाश-रहित ॥ मठ= मन्दिर, धर्मशाला ।

भावार्थ—मेरा नाम तुम क्या पूछते हो ? संसार के सभी जड़ तथा चेतन पदार्थ मेरे ही सुन्दर रूप को दिखा रहे हैं। पानी, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश (इन्हें पंचमहाभूत कहते है, सृष्टि इन से ही बनी है) इन सब मे मैं समाया हुआ हूँ । ब्रह्माण्ड का मूल कारण 'ओम्' भी मुझ में ही लीन होता है ('अहं ब्रह्मास्मि' इस सिद्धान्त के अनुसार कवि सम्पूर्ण संसार के पदार्थों को अपना ही रूप समझता है और स्वयं अपने को 'ब्रह्म' मानता है)॥ मैं आत्मज्ञान की नाव मे आनन्दपूर्वक बैठा हूँ और इस संसार सागर में स्वतन्त्र हो कर घूमता रहता हू । (आत्मज्ञान के बल से मै सारे जगत के व्यवहारों को करता हुआ भी अपने को आनन्दमय और स्वतन्त्र अनुभव करता हूँ)॥

मैं संसार रूपी जल मे कमल और मेघ में सूर्य हू । संसार के घट तथा मठ में जितने आकाश हैं उन सब मे मैं ही आकाशरूप से विराजमान हूँ, मै विचित्र, नाशरहित तथा नित्य हूँ ।

मैंने सिर्फ खेल करने के लिये मनुष्य शरीर धारण किया है । कोई देख नहीं पाया कि तिल के दाने की ओट में यह पर्वत है । (आत्मा सब मे विद्यमान है परन्तु आत्मा ही परमात्मा है इस रहस्य को कोई भी नहीं जानता । यहां पर 'तिल के दाने' से क्षुद्र और नश्वर शरीर का तथा 'पहाड' से शरीर में रहने वाले

[illegible] सच्चिदानन्द [illegible] आत्मा का [illegible] करना चाहिये) अहंकार (मैं ही [illegible]) के हार को [illegible] में [illegible] माया से परिपूर्ण संसार बन बैठा है । (अहंकार की [illegible] में ही जीव माया के प्रपंच में अपने को भूल कर 'संसारी' बन बैठता है) ॥

विशेष वक्तव्य—वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त से आत्मा एक है । वही ब्रह्म है और सारे चराचर में वही व्याप्त है । वह आत्मा स्वयं ही अज्ञानावस्था में आकर 'जीव' बन जाती है और संसार में माया के द्वारा अनेक खेल खेलती है । बस इसी सिद्धान्त को कवि ने वर्णन किया है ॥

—— o ——

नया फूल

पृष्ठ १३६–शब्दार्थ –उपवन=बाग । समीर=वायु । निहारा= देखा । प्रभुता—ध्वजा—अधिकार का झण्डा । अपनी बात बनाई=अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया ।

भावार्थ—बाग में नया फूल खिला है । सब वृक्ष सुखी हो रहे हैं और बेलें मन मे हँस रही हैं । प्रातः काल की ठण्डी हवा का स्पर्श होते पहली दशा जाती रही (दुख दूर हो गया) और सुख प्राप्त हुआ । जिस ओर देखा उधर ही प्रेम से भरी हुई थाली को सामने पाया ।

यह फूल अपना अनुपम रूप ले कर आया और आते ही भीनी भीनी सुगन्ध चारों ओर फैला दी । सब के हृदयो को अपनी प्रभुता (बड़प्पन) की ध्वजा (झण्डा) लहरा कर अपने वश में कर लिया । आते ही तू ने ऐसी लहर चलाई

कि सब को जीत लिया । जिस किसी भी तरह रोकर अथवा हँस कर तू ने अपनी बात पूरी कर ली (मनवा ली)।

——:o:——

आत्मत्याग

पृष्ठ १३७—शब्दार्थ—रोपी = गाड दी । प्रभा-पताका = प्रकाश रूपी झण्डा । हूल = पीड़ा । सुरभिमय = सुगन्धित । डोरियों = रस्सियों । अपना आपा भूल = अपने आप को भूलकर ।

भावार्थ—(कवि आत्म बलिदान की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि आत्मत्याग के गुणों को देखो —) दीपक खुद जल कर प्रकाश देता है। इस ने अपने चमकीले प्रकाश का झण्डा गाड दिया जिस से अन्धकार के हृदय में दुख हुआ। (दीपक के प्रकाश से अन्धेरा भागता है) इस के जीवन रूपी वृक्ष की जड (उद्देश्य) केवल आत्मत्याग ही है, जिस के बल से मनोहर और सुगन्धित यश का फूल खिलता है (आत्मत्यागी के जीवन से भी यश फैलता है)। हा! यह स्वयं जीवन और मृत्यु की डोरी (रस्सी, दीपक की बत्ती, जो डोरी से बनाई जाती है) पर ही झूलता रहता है। (आत्मबलिदान करने वाले व्यक्ति भी अपने जीवन को डोरी अर्थात् फासी इत्यादि पर लटकाने वाले होते हैं) हँस-हँस कर हवा के झोंकों को खाता हुआ अपने आप को भूल जाता है। (आत्मत्यागी भी अपने को भूल कर विपत्तिया सहन करते हैं) ॥

४—६—शब्दार्थ—कबूल = स्वीकार। वसूल = प्राप्त, सफल।

...हृत्स = कन्धा । [illegible] = [illegible] ([illegible]) [illegible] । [illegible] ।
भावार्थ—दीपक (प्रकाश वाला) दूसरों का हित करने
नष्ट होकर मर जाना स्वीकार करता है । 'मेरा जीवन
सफल हो गया' यह विचार कर मन में बड़ा सुखी होता है ।
इस पर भी देखो यह वायु ऐसा पापी है जो इसके विरुद्ध
होकर इस की महिमा को नष्ट करने के लिये धूल उडा
रहा है । (दीपक बेचारा दूसरों को प्रकाश देने के लिये जलता
है परन्तु इसको भी हवा के झोंके बिना किसी प्रयोजन के ही
बुझा देते हैं, इसी तरह आत्मत्यागी वीरों को भी दुष्ट जन
दुख देने का प्रयत्न करते रहते हैं) 'यह वायु इस के साथ
क्यों बैर रखता है ?' यह प्रश्न तो बेकार ही है क्योंकि सुजन
पुरुषों की सुजनता से दुष्ट पुरुषों के हृदय मे पीडा होती
ही है । (दुष्ट मनुष्य सज्जनो के गुणो से जलते हैं यह तो
उन का स्वभाव ही है, अतएव इस का कारण पूछना बेकार है) ॥

——:o:——
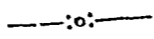
तुलसीदास और रामायण

पृष्ठ १३८-शब्दार्थ-भवसिन्धु = संसार-सागर । जलयान = जहाज । ठाँव=स्थान । निःसार = तुच्छ । शिखर=चोटी । रोम=बाल ।

भावार्थ—महाकवि तुलसीदास ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग सब के लिये आसान बना गये । उन्होंने संसार सागर को पार करने के लिये रामनाम रूपी जहाज बनाया । देखने योग्य और न देखने योग्य, अलौकिक (जो लोको के ज्ञान से दूर हो) और लौकिक को एक ही स्थान पर मिलाया । भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इत्यादि सभी एक गाव मे वसा दिये । स्वार्थ तथा

परमार्थ (भगवान के कार्यों) को एक साथ मिला दिया जि से सारहीन भी सारयुत बन गया। जो मुक्ति जानी नहीं जा सकती थी उसी का द्वार अपनी अनुभव रूपी चाबी से खोल दिया अज्ञान की चोटी पर फँसे हुए मनुष्यों के लिये सीढी तय्यार की जिस से गिर जाने का तनिक भी डर नहीं, क्योंकि उसका आधार 'राम नाम' है। तुम्हारे एक एक रोम मे रामरूप सारा जगत विराजमान है। हे भक्ति तथा प्रेम के अवतार! तुझे बार बार धन्यवाद है ॥

——:o:——

अनुरोध

शब्दार्थ–अरुण = लाल । तम = अन्धकार । नलिनी = कमल । अलिगण = भ्रमरों का समूह । प्रफुल्लित = विकसित । ऐक्यभाव = एकता के विचार ।

भावार्थ—हे प्रिय ! अब तो आंखें खोलो । पूर्व दिशा लाल हो गई है, प्रकृति देवी अपने पट (वस्त्र, वेश) को बदल रही है, मृत्यु ने अन्धकार की बांह पकड़ी है (अन्धकार नष्ट हुआ है) और तारे भी छिप कर भाग गये हैं। प्रसन्न कमल हँस हँस कर खिल उठे हैं, सुगन्धि अपने प्रियतम वायु से मिल गई है, जंगलों की शोभा अत्यन्त मनोहर है और भौंरे गूंज रहे हैं । नया जीवन सब में भर गया है, एकता का विचार फैला हुआ है, सम्पूर्ण जगत् सुख से भरा है और सभी साथी जाग गये हैं । उषा (प्रभात) देवी के दर्शन को पा कर के सभी जड़ और चेतन आनन्दित हो गये हैं। फिर तुम ही अकेले अपनी सुध-बुध भूले हुए सिर को झुका कर क्यों सोए पड़े हो ? हे प्यारे! अब तो अपनी आंखे खोलो (खिल जाओ) । ———

[illegible] हिमकर = चन्द्रमा । शर = तीर । अंधेर = दीन, मलीन । पान = [illegible] । [illegible] = तारों का समूह । [illegible] = निर्बल । चन्द्रिका = चांदनी ।

भावार्थ—यह कैसा [illegible] चन्द्रमा के (किरण रूपी) तीरों ने अन्धकार के शरीर को चीर दिया [illegible] रात्रि ने स्वय ही मालूम ने अपने काले रूप (अन्धकार) को खो लिया । जिस का देख कर मन को [illegible] और कुमुदिनी (एक नीला पुष्प, जो जल में होता है और चन्द्रमा की किरणों से खिलता है) की पंखड़िया भी छिन्न भिन्न हो गई । तारों की दीप्ति भी मन्द पड गई और उल्लुओं का मुंह काला हो गया । (प्रकाश के शत्रु होने के कारण वह भी फीके पड गये) कमल अब नहीं खिलते और कमलिनी (कमलों के बेल) से द्वेष का सामना हो गया (क्योंकि कमल रात को बन्द हो जाते हैं)। सिंह गर्जन रूपी भाले का प्रहार खा कर हाथियों का झुण्ड पागल हो गया । हिरण छिप रहे हैं और बुद्धियों पर ताला पड गया (अर्थात् बुद्धि भी मन्द पड गई) इन की इस खराब हालत को देख कर नाला 'हर हर' (दया या भय-सूचक शब्द) कहता है (क्योंकि नाला शब्द करता हुआ बहता है)। डर के मारे छिपा हुआ अन्धकार सोचता है कि 'क्या यह काल की ज्वाला तो नहीं जली है ? अब तो यह बड़ा भारी धर्म संकट आ पड़ा है । अब हमारी रक्षा कौन करेगा"? (अन्धकार के इन वचनों को सुन कर) चांदनी हँस कर बोली कि ऐ काला ! अब तुम कहां छिपोगे अर्थात् नष्ट हो ही जाओगे ॥

सूखी पत्ती

शब्दार्थ—चुरमुर=चूर चूर। बदरंग=खराब रंग । झौंरे= फूलों का गुच्छा। झोंटे लेती=झौंके लेती थी । प्रतिध्वनि=गूंज, एक बार सुनाई दे कर फिर उत्पत्ति-स्थान पर टकरा कर सुनाई देने वाला शब्द। भुजग=सांप ।

भावार्थ—ऐ सूखी पत्ती ! तुम अब जमीन पर पड़ कर ठोकरें खाती हो, तुम्हारा रंग पीला हो गया है, काल ने तुम्हारे सारे रस तथा रूप को लूट लिया और सब अंग चूर चूर हो गये हैं। जिस पर तुम हमेशा सवार रहती थी और हर्ष से बातें करती थी, वही वायु अब तुम पर धूल फेंकती है और सारी ही परिस्थिति उलट गई है। तुम अहंकार के नशे में चूर होकर सब पर हँसती हुई झूमती थी, अब तुम को कौन पूछता है ? तुम्हारा वह सुख स्वप्न की तरह नष्ट हो गया है। तुम सब के सिर पर (ऊँची) चढ़ी थी, मगर अब तुम्हें सभी पैरों तल दबाते हैं, तुम ने इतना ऊंचा चढ कर यह पतन(गिरावट) देखा, तुम्हारा सारा रंग खराब हो गया है। जिस फूलो के गुच्छे पर झौंके मारती हुई तुम हिलती रहती थी उसने भी तुम को भुला दिया है और वह सारा प्रेम उलटा हो गया है। क्या तुम अब पेड़ के साथ जुड़ सकती हो? तुम किसकी है और तुम्हारा कौन है ? इस संसार मे कभी भी किसी ने किसी के कष्ट मे साथ नहीं दिया है। दुःख तो अभिमान का ही परिणाम है, (जिस प्रकार जो शब्द गुफा इत्यादि मे बोला जाता है वही वापिस सुनाई पड़ता है, इसी प्रकार अभिमान ही बदल कर दुःख बन जाता है) आशा का रूप निराशा है। जीवन का कारण मरण है (आदमी मरने के बाद ही फिर उत्पन्न

दो। हे सखी ! नई कलियों के पास झूमती हुई और फूलों के होठों को चूम कर प्रसन्न हुई हुई तुम एक कवि की भांति संसार में घूम कर पाठ सीखती हो। हे कोमल भौंरी! मुझे भी केसर के यह गीत ज़रा सुना दो॥

किसी के उर में तुम अनजान—

शब्दार्थ—उर = हृदय। भोर = प्रातःकाल।

भावार्थ—ऐ भोली भौंरी ! कभी तो तुम किसी के हृदय में उस के चित्त को चुराती हुई वन्द हो जाती हो, फिर प्रभात में उस (पुष्प) के खिल जाने पर अधखिले और खिले कोमल गीतों को गूंथती हो (कमल में रात को कभी भौंरा वन्द हो जाता है और प्रभात में उसके खिलने पर गुञ्जार करता हुआ निकल जाता है) हे कुमारी ! क्या मुझे रात के उन स्वप्नों के मीठे गान न वताओगी ? ॥

सूँघ चुन कर, सखि ! सारे फूल —

शब्दार्थ—विंध = छेदता। सरस = मधुर।

भावार्थ—हे सखी ! तुम सारे फूलों को सूंघ कर और चुन कर अपने चञ्चल स्वभाव से ही उनके कांटो से विंधकर उन में वन्द होकर अर्थात् फंस कर तथा अपने सुख दुःख को भूल कर ऐसा रसीला गाना गाती हो कि मधुमूल (रतालू या उत्तम शहद) भी धूल वन जाता है। (नीरस मालूम पड़ता है) हे सुकुमारी ! तव हमें भी इसी से थोड़े मीठे गीतों का पान करा दो। फूल के खुले हुए कटोरों से हमें भी थोड़ा थोड़ा मधु पिला दो॥

दो। हे सखी! नई कलियों के पास झूमती हुई औ फूलों के होठों को चूम कर प्रसन्न हुई हुई तुम एक कवि कं भांति संसार में घूम कर पाठ सीखती हो। हे कोमल भौंरी मुझे भी केसर के यह गीत ज़रा सुना दो॥

किसी के उर में तुम अनजान—

शब्दार्थ—उर = हृदय। भोर = प्रातःकाल।

भावार्थ—ऐ भोली भौंरी! कभी तो तुम किसी के हृदय मे उस के चित्त को चुराती हुई वन्द हो जाती हो, फिर प्रभात मे उस (पुष्प) के खिल जाने पर अधखिले और खिले कोमल गीतो को गूंथती हो (कमल में रात को कभी भौंरा वन्द हो जाता है और प्रभात में उसके खिलने पर गुञ्जार करता हुआ निकल जाता है) हे कुमारी! क्या मुझे रात के उन स्वप्नों के मीठे गान न वताओगी?॥

सूँघ चुन कर, सखि! सारे फूल—

शब्दार्थ—विंध = छेदता। सरस = मधुर।

भावार्थ—हे सखी! तुम सारे फूलों को सूंघ कर और चुन कर अपने चञ्चल स्वभाव से ही उनके कांटों से विंधकर उन मे वन्द होकर अर्थात् फंस कर तथा अपने सुख दुःख को भूल कर ऐसा रसीला गाना गाती हो कि मधुमूल (रतालू या उत्तम शहद) भी धूल वन जाता है। (नीरस मालूम पड़ता है) हे सुकुमारी! तव हमें भी इसी से थोड़े मीठे गीतों का पान करा दो। फूल के खुले हुए कटोरों से हमें भी थोड़ा थोड़ा मधु पिला दो॥

मौन-निमन्त्रण

पृष्ठ १४४ स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार—

शब्दार्थ—स्तब्ध=शान्त । ज्योत्स्ना=चाँदनी । नादान=अनजान । नक्षत्र=तारे । भीमाकाश=भयानक आसमान । दीर्घ=लम्बे । समीर=पवन । प्रखर=तेज । पावस=वर्षा काल । तपक=चमकती । तड़ित=बिजली । इंगित=इशारा ।

भावार्थ—जब यह जगत शान्त चाँदनी में बच्चे की तरह अनजान होकर आश्चर्यमग्न रहता है, जब संसार के कोमल पलकों पर अनजाने स्वप्न विचरते रहते हैं (लोग सोकर स्वप्न देखते रहते हैं) उस समय न जाने तारों में से कौन मुझे मौन निमन्त्रण (चुपचाप बुलावा) देता है ॥ जब घने बादलों से घिरा हुआ भयानक और अन्धकारमय आकाश गरजता है और वायु लम्बी लम्बी सास लेती है, (जोर से बहती है) वर्षा की तेज धाराएँ बरसती हैं, उस समय न जाने चमकती हुई बिजली में से कौन मुझे मौन होकर इशारा करता है ॥

पृष्ठ १४५ देख वसुधा का यौवन भार—

शब्दार्थ—वसुधा=पृथ्वी । मधुमास=वसन्त । विधुर-उर=भग्न हृदय (टूटा हुआ दिल) । उद्गार=आह । सोच्छ्वास=गहरी सास से । सौरभ=सुगन्धि । मिस=बहाना । वात=हवा । फेनाकार=झाग की शकल । बिथुरा=फैला ॥

भावार्थ—पृथ्वी के यौवन के भार को देखकर जब वसन्त ऋतु गूञ्ज उठती है, जब फूल गहरी सासों के

साथ भग्न हृदय की कोमल आहों के समान खिल जाते हैं, तब न जाने सुगन्धि के बहाने कौन मुझे मौन सन्देशा भेजता है ? ॥ जब वायु समुद्र मे चञ्चल ऊंची ऊंची लहरों को मथकर झाग की शकल में बना देता है और बुलबुलों (जल के झागदार कण) का एक व्याकुल और अज्ञात संसार बना कर उन को फैला देता है, उस समय लहरों से हाथ को उठा कर न जाने कौन मुझे मौन होकर बुलाता है ? ॥

स्वर्ण सुख, श्री—

शब्दार्थ—स्वर्ण = सोना । श्री = धन । बोर = डुबाना । विहग = पक्षी । कल = सुन्दर । हिलोर = लहर । भू-नभ = पृथ्वी तथा अकाश । छोर = किनारा । अलस = भारी । तुमुल = घोर । भीरु = डरपोक । झींगर = झिल्ली । तन्द्रा = अर्द्ध निद्रा । खद्योत = जुगनू ।

भावार्थ—जब प्रातःकाल संसार को सुनहरी प्रकाश, सुख, धन या शोभा और सुगन्धि में डुबाता है, जब पक्षियों के सुन्दर कण्ठ की लहरे (गीत) पृथ्वी और आकाश के किनारों को मिला देती हैं, तब न जाने नीन्द से भरे हुए मेरे पलकों को कौन चुपचाप खोल देता है ॥

जब घोर अन्धकार मे सारा ससार एक रूप होकर ऊंघता रहता है (सब सो जाते हैं), भयशील झिल्लियों (वह कीड़ा जो झीं झीं करता है और वृक्षों पर प्राय. वर्षा काल में होता है) का 'झीं झीं' शब्द नींद के तारों को हिलाता है, उस समय न जाने जुगनुओं जैसा कौन चुप रह कर मुझे रास्ता दिखाता है ॥

अटल। अपिधान = आवरण।

भावार्थ—ऐ संसार तथा संसार मे दुखी हुए मन! यह जीवन किस ओर जा रहा है? यह छोटा-सा जहाज पत्ती, तिनका तथा धूलि के समान अनित्य तथा भयशील हो कर फैला हुआ है। यह कमज़ोर जहाज किस अनन्त और अज्ञात की ओर डोल रहा है? मेरे यह दुःखित गीत लहरो मे गूंगे बुलबुलों के समान और सांस की तरह स्वयं ही निकल पडते हैं, पर हाय! इनकी ओर किस का ध्यान है? ऐ मुझे मार्ग दिखाने वाले! हे प्रकाशमान मेरे ध्रुव (उद्देश्य)! तुम कहाँ छिपे हो? हे देव! मेरे नेत्रों से आवरण हटा कर तुम मुझे कब अपना दर्शन दोगे?॥

——o——

चाह

पृष्ठ १४८ मैं नहीं चाहता ·····

शब्दार्थ—अविरत = लगातार। घन = मेघ। शशि = चाँद। निशा-दिशा = रात-दिन। आलिंगन = गले लगना। आनन = मुख।

भावार्थ—मैं न चिरकाल तक सुख चाहता हूँ और न लगातार दुःख ही चाहता हूं। सुख दुख तो आंख मिचौनी का खेल है। इस में जीवन अपना मुख स्वयं ही खोल दे॥

मेरा यह जीवन सुख तथा दुख के मधुर मिलन से पूर्ण रहे। चन्द्रमा फिर बादलों में छिप जाय और बादल फिर चांद से छिप जायें॥

संसार अत्यन्त दुख अथवा अत्यन्त सुख दोनों से ही पीड़ित (दुखी) है, अतएव मनुष्यों के संसार मे दुख सुख

में और सुख दुख में विभाग हो जाय (समान मात्रा में ही दुख और सुख होना रहे)॥ निरन्तर रहने वाला दुख पीड़ित करता है और इसी प्रकार निरन्तर रहने वाला सुख भी पीड़ा देता है। संसार का जीवन सुख दुख रूपी रात-दिन में सोता और जागता है (सुख की रात में सोता है और दुख रूपी दिन में जागता है)॥

ऐ मनुष्य! तेरा यह जीवन सन्ध्या और प्रात: काल का आगन (नदन) है, यह वियोग तथा मिलन का आलिंगन (मिलाप) है तथा इन का सुख नहा है नो तथा आंसुओं से भरा हुआ रहता है (इस में सुख और दुख बारी बारी आता और जाता है)।

— o:—

विश्वास

पृष्ठ १४६ सुन्दर विश्वासों से ही ... ...

शब्दार्थ स्पन्दन = धड़कन। भाते हैं = शोभा देते हैं। कन = बूंद। विशद = निर्मल। जलधि = समुद्र। अणु = अति सूक्ष्म भाग, परमाणु। गुरुतम = बहुत भारी। साधन = पदार्थ।

भावार्थ—ऐ मनुष्य! यह जीवन अच्छे अच्छे विश्वासों से ही सुखपूर्ण बनता है जिस तरह स्वभाव से ही चलने वाली सांसों से हृदय की कोमल धड़कन (गति) चलती है। (शरीर विज्ञान के अनुसार सांस के द्वारा ही हृदय की गति होती है।) अगर हँसने के लिये मन हो तो हँसने में ही सुख है, दुख में मोती के समान आने वाली आंसुओं की बूंदें भी शोभा देती हैं। विश्वास महिमा के निर्मल समुद्र में छोटी छोटी बून्दों के समान है। परमाणु (छोटे छोटे ज़र्रों) से ही जगत के जीवन का विकास हुआ है।

और छोटे परमाणु द्वारा ही भारी से भारी पदार्थ बनता है। (जिस प्रकार परमाणु से ही संसार के बड़े बड़े पदार्थ बनते हैं उसी तरह थोड़े से विश्वास से भी मनुष्य का जीवन बना रहता है।) जीवन के नियम सीधे हैं परन्तु सीधापन बहुत काल से गुप्त रहस्य बना हुआ है। मुक्ति का अवसर स्वभावतः ही मधुर होता है परन्तु मुक्ति का बन्धन कठिन होता है।

बरसो

पृष्ठ १५० जग के उर्वर आंगन में

शब्दार्थ—उर्वर = उपजाऊ । ज्योतिमय = प्रकाशस्वरूप । अव्यय = नाशरहित । नूतन = नया । प्रणय = प्रेम । स्मिति = हास्य की छटा । मृत = मिट्टी । सुखमा = शोभा । संसृति = संसार ।

भावार्थ—संसार के उपजाऊ सहन मे, हे प्रकाशस्वरूप! तुम जीवन बरसा दो, हे सनातन! नाशरहित! और नित्य नवीन रहने वाले! तुम छोटे छोटे घास तथा वृत्तों पर बरसो।

तुम फूलों मे मधु (शहद) बन कर और प्राणों में अमर प्रेम रूपी घन बन कर बरसो। तुम होठो में मुस्कराहट, पलकों में स्वप्न (नींद), हृदय मे सुख तथा अंगों मे जवानी बन कर बरसो। संसार के धूलि के कण, वृत्त तथा घास को जो कि जड़ हैं स्पर्श करके तुम उन्हें चेतन (प्राणवान) कर दो। तुम प्राणों का आलिंगन (मिलाप) देकर जगत् का मिट्टी हो कर मर जाना बन्द कर दो। हे संसार के जीवन धन! तुम सुख और शोभा बन कर बरसो और हे संसार के सावन [वर्षाकाल] तुम हर एक दिशा मे और प्रत्येक क्षण मे बरसते रहो।

— :o: —

याचना

मेरा प्रतिदिन'''

शब्दार्थ—शुचितर = अधिक पवित्र । सुघर = सुन्दर । मुकुल = कली ।

भावार्थ—मेरा प्रत्येक क्षण सुन्दर हो मेरा प्रत्येक दिन सुन्दर और सुख देने वाला हो । यह क्षणिक लघु जीवन सुन्दर, सुखकर और अधिक पवित्र हो । बूँदें अस्थिर और क्षुद्र होती हैं, किन्तु सागर में सागर बन कर रहती हैं । इसी तरह मेरे जीवन का एक-एक बूंद अर्थात् क्षण मोती के समान सरस और सुन्दर हो । सुन्दर पुष्प मधुमय होते हैं और पुष्पों की ही मीठी मधु होती है । मेरा यह मन रूपी फूल भी हर्षित, प्रफुल्लित और मधुमय हो । मेरा प्रत्येक क्षण निर्भय, शंकारहित और कल्याणकारी हो । मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण तन्मय हो, तन्मय हो ।

कहेंगे क्या'''

मुसकान

शब्दार्थ—विपिन = जगल । पावस = वर्षा ऋतु । सहसा = एकदम । दुराव = छिपाव । निदान = अन्त में । तारकों = आँख की पुतली । हिम = ठण्डा । अपनाव = अपनापन । गुदगुदाते = गुद गुदी करते, चुलबुलाते ।

भावार्थ—'सब लोग मुझ से क्या कहेंगे' कभी इस बात का भी ध्यान आता है । हे सखि ! रोकने पर भी तो यह मुस्कान नहीं रुकती । वर्षा ऋतु मे वन मे दिखाई पडने वाले दीपकों (जुगनुओं) की भाँति मेरे हृदय मे अत्यन्त सैकडों कोमल विचार

एकाएक हमेशा उठते रहते हैं, मैं उन को बिलकुल भी छिपा कर नहीं रख सकती हूँ । विचारों के ये अनजान बालक आखिर में मुझे हँसा ही देते हैं। ये नये नये विचार मेरी आँखो की पुतलियों से पलकों पर कूद कर मेरी नींद को भगा देते हैं। कभी यह ठण्डे जल की बूंदे बन कर मेरे साथ चिर काल तक अपनापन बढाते हैं, शरीर, मन तथा प्राण गुदगुदाते हैं, उस समय यह हँसी नहीं रुकती । कभी यह मेरे कोमल भाव पत्तियों के साथ उड कर मुझ से मिलते हैं, कभी तरंगों से अपना हाथ फैला कर मुझे भी उस पार [सागर के दूसरे तट पर] बुलाते हैं । मुझे जगत का ज्ञान नहीं रहता है और केवल अनजान हो कर हँसती हूँ । ऐ सखि ! क्या कहूँ तब मेरी यह मुस्कराहट रोकने पर भी नहीं रुकती ।

—o—
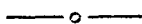
रामकुमार वर्मा

जीवन-परिचय

वर्मा जी का जन्म १६६२ विक्रमी मे मध्य प्रदेश के सागर जिला मे श्री लक्ष्मीप्रसाद जी के यहा हुआ। आप बाल्यकाल से ही कविता के प्रेमी हैं।

यद्यपि आप की कविता कुछ अस्पष्ट सी होती है तथापि उस मे हृदय की कसक एवं कल्पनामय अनुभूति होती है । आप की 'निशीथ' 'रूपराशि' 'अंजलि' आदि कई पुस्तकें हिन्दी संसार में प्रतिष्ठा पा चुकी हैं ।

आप आज कल प्रयाग-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक पद पर विराजमान हैं।

प्रातः समीर

ओ समीर, प्रातः समीर ....।

शब्दार्थ—पल्लव = पत्ते। सुमन = फूल। छलकाकर = छिटका कर। निष्ठुर = निर्दय।

भावार्थ—ऐ प्रातःकाल के पवन! मेरी पत्तियां सो रही हैं, मेरे शान्त स्वप्नों की शृंखला टूटने न पावे। तुम या तो धीरे धीरे आ जाओ अथवा उस पार दूर रह कर देखते रहो। तुम्हारी आहट (पैरों का शब्द) से तो पुष्प रूपी सरल बालकों ने आंखें खोल दीं। ऐ निर्दय पवन! तुम ने यह सुन्दरता का अमृत छिडक कर उस का गौरव क्यों कम कर दिया?

शब्दार्थ—उन्मत्त = पागल। असम = उल्टा। ध्वनि = शब्द। व्योम = आकाश। मादक = मस्त बनाने वाले।

भावार्थ—ऐ समीर! तुम कलियों को मत छूना, यह तो सीधी और अबोध कन्याएं हैं। रे पागल! तुम इन के पास जवानी के गीत नहीं गाना। तुम्हारा वेग बहुत ही उल्टा-सीधा है, तुम अपने शब्दरूपी पैरों से आकाश में विचरते हो॥

पृष्ठ १५६—किस का शिशुपन चुरा कर ....।

शब्दार्थ—शिशुपन = बचपन। प्रेयसी = प्रेमिका।

भावार्थ—किस के बचपन को लूट लूट कर आज तुम आंखों में भर रहे हो? किस की ललाई को हरण करके तुम अपनी उषा रूपी प्रियतमा का साज सजा रहे हो? अरे! तुम ने अपने

एक ही झोंके से तारक फूलों को क्यों उड़ा दिया ? ऐ पागल प्रात:पवन ! तुम ने मेरे स्वप्नों में जागृति की धूल क्यों भर दी ? (मुझ को नींद से क्यो जगाया ? मेरे स्वप्नों को भंग क्यों किया ?) ॥

जीर्णगृह

लिये कितनी स्मृतियों का कोष—

शब्दार्थ—जर्जर = शिथिल अंगो वाला । अतीत = गुजरे हुए । वातायन = खिड़की ।

भावार्थ—ऐ मेरे घर ! कितनी ही याद दिलाने वाली घटनाओं तथा भिखारी की तरह ढीले तथा भारभूत शरीर को लिये तुम आज किस को भूला हुआ प्रेम करने को खड़े हुए हो ? दिनरात खडे खडे ही तुमने कितने ही गुजरे हुए सालों को अपनी गोद मे सुलाया, तुम ने हमेशा झांक झांक कर देखने वाले सुहावने प्रभातों को बुलाया है (घर की खिड़कियों से प्रभात का समय झांक कर देखा जाता है) ।

रात की काली चादर ओढ—

भावार्थ—रात्रि की काली चादर को ओढ कर तारे चुप-चाप निकलते थे । वे भयानक अन्धेरे की तरह पाप को चारो ओर देखते थे ॥ उस समय तुम भी अपने हृदय (घर के मध्यभाग) मे उत्तम स्नेह (प्रेम तथा तेल) से रोशनी जला कर के अपने चमकने वाले छेद रूपी नेत्रों से उन तारों के प्रकाश को एकटक देखते थे (घर के छेदों से रात को जो प्रकाश

नागर की ओर निकलता है उन पर ही नेत्रों का आरोप किया है)॥

तुम्हारे लघु छिद्रों से नयन—

शब्दार्थ—नैन = नेत्र। आतङ्क = डर। अविराम = न रुकने वाला।

भावार्थ—उस समय मैं यह कब जानता था कि जब ये तारे छिन्न हो जायेंगे तो तुम्हारे छोटे छिद्रों वाले नयन कभी प्रकाशित न होंगे; हाय ! तुम पर सिर्फ छाया का ऐसा डर छायेगा और रात तथा दिन का न रुकने वाला प्रवाह तुम पर चुपचाप होकर निकल जायेगा॥

आह वह स्मृतियां—

शब्दार्थ—उग्र = तीव्र। रजनी = रात। उफ = हाय (खेद सूचक अव्यय)। सिमिट = संकुचित।

भावार्थ—आह ! वह कितनी ही (अनगिनत) तीव्र स्मृतियां अब कहां किस ओर हैं ? वहां रात्रि का समय कैसा था और उस का घोर अन्धकार किस प्रकार फैला हुआ था। और जब मेरी माँ का संसार क्षण प्रति क्षण खिल रहा था और अविचल अन्धकार नेत्रों की ज्योति में सिमट गया था, उस समय कभी तो आंख की पुतली क्षण भर में ही अपनी गति को भूल जाती थी (नेत्र इकटक होकर देखते थे) उस को और प्यार से पाले गये सीधे सादे बालक चुपचाप होकर देखते थे॥ यह पापी हवा सूखे हुए होठों के अज्ञात वचनों को चुरा ले गई। जिस तरह ओस की बूंदें उड़ जाती

हैं उसी तरह फूल के समान शरीर से आयु भी चली गई।

आज धीरे धीरे—

शब्दार्थ—बुझी—प्रकाशहीन। छोर = कोना।

भावार्थ—नेत्र धीरे से खुल गये और धीमी नजर चारों ओर पहुँच गई। पुतली ने प्रकाशरहित नेत्रों के कोने को धीरे से छू लिया [नेत्र भी बन्द हो गये]। उसी समय उज्ज्वल दीपक की रोशनी भी प्रतिक्षण अधिक मलिन होकर आखिर मे सायंकाल के समान हो गई। यही तो है संसार का दो दिन का तमाशा। यह कितने ही फूलों को खिलाता है और दो दिन के भूखे भौंरे अपनी सुध बुध भूल कर उन पर झूलते हैं। (अर्थात् संसार अस्थिर है) ॥

तुम्हारा सुन्दर उपवन—

शब्दार्थ—उपवन = बाग। नत = झुका हुआ। कंकाल = हड्डियों का ढाचा। व्यंग = कटाक्ष। (व्यंग का मूल अर्थ है शरीर की विकृति)।

भावार्थ—तुम्हारा वह सुन्दर बाग और सुन्दर तथा विशाल रूप कहां गया ? आज तो तुम्हे सारी दुनिया रोगी पुरुष के झुके हुए हड्डियों के ढांचे (शरीर) के रूप मे देख रही हैं॥ जो वायु कभी सुगन्धि के भार से थकी हुई तुम्हारे अंगों के साथ लिपटी रहती थी, वही अब तुम को जल्दी से छू कर निकल जाती है और तुम उसके कटाक्ष को देखते रह जाते हो।

बने हो अब अतीत के ·····।

शब्दार्थ—बिन्दु = चिह्न। अवनी = पृथ्वी। निरुपाय = असाध्य।

अरे यह क्षण भंगुर······

शब्दार्थ—क्षण भंगुर = पल में ही नष्ट होने वाला। पट = वस्त्र परिवर्त्तित = बदला हुआ। असार = तुच्छ। सित = सफेद। ग्लानि = अरुचि। व्याल = सर्प।

भावार्थ—अरे! क्षण में ही नष्ट होने वाला यह संसार तरह तरह के कपड़े (वेश) बदलता रहता है। एक छोटा सा बालक बूढ़ा बन जाता है और सभी वस्तुओं को जल्दी ही नीरस बना देता है। काले काले बाल जल्दी सफेद हो जाते हैं, प्रेम मे अरुचि होने लगती है, अनुराग कम हो जाता है और शिशु जल्दी ही जर्जर (बूढ़ा) वेश बनाता है। (सृष्टि के) अटल नियमों के अनुसार सुखमय समय जल्दी ही दुखमय बन जाता है, अमृत विष बनता है और बेलें सापिन की तरह हो जाती हैं।

निराशा

पृष्ठ १६१ इस क्षणिक ····

शब्दार्थ—क्षणिक = पल भर रहने वाले। राग = प्रेम। सुमन = पुष्प। परिधि = रेख, मण्डलाकार रेखा। लघु = थोड़े।

भावार्थ—इस पल भर रहने वाले रंग (दुनिया के ऐश्वर्य) में प्रेम कहां? फूलों के सीमाबद्ध घेरे मे सुगन्धि का प्रेम कहां होता है। वह तो स्वयं आकाश मे विचर रहा है। संसार के अन्दर बन्धन में पड़ना हमेशा भार होता है। पृथ्वी के थोड़े से सुख तथा धन मे मेरे जीवन का त्याग कहां? रूप तथा गन्ध की आकर्षण शक्ति से मन प्रति पल विचलित होता है, परन्तु फूल के समान हृदय कहां और इस आकर्षण शक्ति की अग्नि कहां? क्षणमात्र

ने वाले इस प्रपंच में प्रेम क्या ? ('सांसारिक विषयों से मनुष्य को वैराग्य होना स्वाभाविक कठिन है' इसी बात को कवि आशा के रूप में प्रकट करता है) ॥

—:o:—

एक प्रश्न

शब्दार्थ—घटा=बादल। घुमड़=मेघों का घिरना। घहरी=गर्जन किया। रंगभूमि=नाट्य स्थान, स्टेज। विद्युत्=बिजली। मिथ्या=झूठ। दारुण=कठोर। उलझाई=फँसा दी॥

भावार्थ—बादल चारों ओर घिर कर आ गये, घन घोर गर्जन कर के और घिर कर भी पूरे नहीं बरसे। मेघों ने आकाश के रंगस्थल पर बिजली से नाच किया और हँस कर के मोतियों की माला जैसी बूंदें बरसाईं॥ परन्तु उन को यह विदित हो गया कि आकाश में रहना असत्य है, इस धरती पर गिर कर उस बूंद ने मेरे समान गाने पाई॥ उस बन्धन में रहने पर किसी प्रकार की शान्ति नहीं है। आज घटा ने रो रो करके यह कठोर कथा सुनाई। हे प्रभो! तुम ने आंख को आंसू और मन को दया क्यों दी? तुम ने तो मेरी गति को सुलझाने के बदले उलटा और उलझा दिया॥

रहस्य

शब्दार्थ—व्यथा=पीडा। मत्त=मस्त। सुरभि=महक। अभिनय=नाटक। तस्कर=चोर। जाला=मकड़ी का जाला।

भावार्थ—यह जीवन तो सचमुच एक दयापूर्ण कहानी है। शब्दों में तो सुन्दरता है पर अर्थ में पीडा भरी रहती है।

फूलों को मस्त करने वाली महक जिस प्रकार नष्ट हो जाती है ठीक ऐसा ही यह क्षुद्र जीवन है जो जीते जी ही घटने लगता है। इस जीवन की सिर्फ याद ही शेष रहती है और मन में चुभती रहती है और नेत्रों के कोमल कोने में करुणारस की धारा (आँसू) बहती है॥ यह जीवन एक नाटक ही है जिस में साहस (हिम्मत) के पीछे चोर के समान विचलित हुआ भय विद्यमान है (जिस तरह चोर चोरी करने का साहस तो करता है परन्तु उसके पीछे भय भी लगा ही रहता है इसी तरह जीवन भी है) यह जीवन तो काल के घर में एक टूटा तथा टेढ़ा सा जाला है जो देखने में तो रेशम के समान है परन्तु अन्त में फटा हुआ और काला होता है॥

अनुभूति

१६४—अनुभूति—अनुभव (जीवन के वास्तविक परिणाम का ज्ञान)।

'शब्दार्थ—चयन=चुनना। अथसे=आरम्भ से । श्याम= काली। श्वेत=सफेद। ग्रह=सूर्य इत्यादि नव ग्रह।

भावार्थ—मैंने आज अपनी भूल देख ली। मैंने सुन्दरता को चुनने के लिये वह फूल तोड़े जो कुम्हलाने वाले थे। जिस जीवन में मैं प्रारम्भ से हूँ वह साँसों के रास्ते से निकल रहा है, पर मैं रात और दिन की काली और सफेद गति (चाल) को अपने अनुकूल मान रहा हूँ। समय हँस पड़ा और मैंने उस को सुख मान लिया । यह दुनिया तो एक

जाना (जल) था, वह ग्रह और तारे कुछ नहीं हैं, केवल आकाश में कुछ धूल सी छैन रही है। (ग्रह और तारों का प्रकाश भी धूल के समान अनित्य है) मैंने आज अपनी भूल देख ली॥

ठाकुर गोपालशरण सिंह

जीवन परिचय

ठाकुर जी रीवां राज्य के प्रसिद्ध जागीरदारों में से हैं। आप का जन्म संवत् १९४८ पौष शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था। आप को बाल्यकाल से कविता का प्रेम है। आप की कविता में उच्च भाव, सरसता एवं सरलता होती है। आप की कविताएं 'माधवी' नाम से संगृहीत हैं। आप १९८२ में वृन्दावन में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के सभापति भी बन चुके हैं।

ठाकुर जी उदार प्रकृति के तथा प्रजावत्सल व्यक्ति हैं। आप को हिन्दी भाषा से प्रगाढ़ प्रेम है।

उच्छ्वास

शब्दार्थ—आन=गौरव का खयाल। वैभव=दौलत। पूर्व-विकास=प्राचीन काल की उन्नति। सपना=स्वप्न। ह्रास=अवनति। जगतीतल=पृथ्वी मण्डल पर। उपहास=हँसी। गुण-ग्राम=गुणों का समूह। ललाम=सुन्दर। महामुद-धाम=अधिक आनन्द का स्थान। शौर्य=वीरता। अभिराम=सुन्दर। प्रकाम=अधिक। पौरुष=पुरुषार्थ, साहस। नेक=तनिक। अबोध=

जैसा अपना नाम (यश) रहा करता ? अब हम में थोड़ा सा भी पुरुषार्थ (बल) नहीं. अपनों के प्रति का प्रेम भाव भी नहीं रहा। शरीर में शक्ति का और मन में दृढ़ता का नाम भी नही रहा। हम इस प्रकार ज्ञानरहित हो गए हैं कि छोटे छोटे लालचों में ही फंस जाते हैं। हे प्रभो ! हम दीन दुःखी किन किन बंधनों में फंसे हुए हैं क्या इस बात का तुम्हें ज्ञान है ?

हम दुःख-सागर में डूब रहे हैं। हे प्रभो ! हमारी बांह पकड़ो ! पकड़ो !! हे सब के एक मात्र स्वामी! हम अधिक क्या कहें, बस आप शीघ्र ही हम पर कृपा कीजिये। यह भारत कहीं बिल्कुल ही बरबाद न हो जाए, आप इसे धन धान्य से भरपूर कीजिए। बस अब जरा भी देर न होने पावे, आप इस दुःखपूर्ण दशा को दूर कीजिए !!

गली में पड़ा हुआ रत्न

शब्दार्थ—मनुज=मनुष्य। हीनता=कमी। मना=मिला हुआ। जौहरी=रत्नों की परीक्षा करके वेचने वाला। गुणज्ञ=गुणों को जानने वाला ॥

भावार्थ—ऐ रत्न ! तू अभी तक इस गली में पड़ा और बहुत से दुखों को सह रहा है। ऐ प्यारे, सभी मनुष्य तुम को कुचलते हुए चलते हैं और कोई भी तुम पर ध्यान नहीं देता है। परन्तु इस से तुम्हारा कुछ भी घटता नहीं. जो तुम्हारा अनादर करते हैं वे ही मूर्ख हैं (क्योंकि रत्न को नहीं उठाते) ऐ रत्न। यद्यपि तुम यहां धूल में मिले हुए हो और एक पत्थर के टुकड़े के समान ही बन गये हो, तुम्हारे

प्रति लोग तनिक भी आदर नहीं दिखाते हैं और तुच्छ क्षुद्र जीव तुम्हारे ऊपर से ही ठोकर खाते जाते हैं. परन्तु ऐ रत्न! कोई जौहरी तुम को अवश्य अपनावेगा, क्योंकि जो स्वयं गुणों को जानता है वही गुणवान का आदर करता है ॥

भी पड़ा रह रत्न ।

शब्दार्थ – कल्याणी = सुन्दर । चाव = शौक । नृप = राजा । जौहर = तत्व, उत्तमता ।

भावार्थ—ऐ रत्न! तुम धीरज धारण करके अभी यहीं पड़े रहो । ऐ प्यारे, किसी रोज तुम राजा के ताज पर चढ़ोगे अथवा तुम्हारा हार बना करके राजा की सुन्दर रानी बड़े शौक से पहनेगी । जो इस समय तुम को नहीं पहचानते हैं उनकी आँखें खुल जायेंगी और वह हाथ मल कर दुख से फिर पछताया करेंगे । तुम मन में दुखी न हो, वह दिन जल्दी आयेगा जब हे रत्न! तुम अपने योग्य पद को पाओगे । हे रत्न! जब तुम्हारी उत्तमता प्रकट हो जायगी तब तुम्हारे लिये कौन अपने हाथों को नहीं पसारेगा? मेरे मन में बार बार यही विचार आता है कि दुख सहने पर ही दुनिया में ऊंचा स्थान मिलता है ॥

चाह

शब्दार्थ—मनोरथ = इच्छा । दृग-जल = आँसू । अथाह = गहरा । उरदाह = हृदय की जलन ।

भावार्थ—जितनी मेरी इच्छाएं थीं उन सब को मैंने बहा दिया । इन आंसुओं का प्रवाह कितने जोर का है । मुझे इतने दिनों के बाद विदित हुआ कि नेत्रों में गहरा समुद्र छिपा हुआ है ।

मेरे प्राण हमेशा छटपटाते रहते हैं और मेरे हृदय की जलन भी बहुत बढ़ गई है, परन्तु ऐसे दुख में भी जो मुझे जीवित रख रही है वह केवल तुम को एक बार देखने की अभिलाषा है।

— = —

उन्माद

जब नहीं आकर......।

शब्दार्थ—अतीव = अत्यन्त। दृष्टिगोचर = आँखों से दिखाई देने वाला। लोचन = आँख। वज्रनिपात = वज्र का गिरना।

भावार्थ—हे प्रभो! जब तुमने हृदय में आकर निवास न किया तब वह (हृदय) अधीर हो कर स्वयं ही तुम्हारे पास चला। परन्तु वह बहुत खोज करने पर भी तुम को न पा सका और अन्त में बहुत ही निराश हो कर वापस लौट आया। सभी बुद्धिमान् कहते हैं कि तुम आँखों से नहीं दिखाई देते। फिर हम भी इस बात को सत्य क्यों नहीं मान लेते? (इसे सच मान कर ही) हम आँखों को मूंद करके तुम्हारा ध्यान करने लगे। परन्तु दुःख है कि फिर भी हमें तुम्हारा ज्ञान न हुआ। अच्छा, ध्यान देकर एक दिन की बात और सुन लो। हम पड़े सो रहे थे और रात भी काफी बीत चुकी थी। उस समय ऐसा कुछ प्रतीत हुआ कि सामने तुम ही खड़े हो, परन्तु जब नेत्र खुल गए तब वज्र के गिरने के समान अवस्था हुई (तुम को सामने न देख कर दुख हुआ)॥

पृष्ठ १७२ खिल-खिला कर.....।

शब्दार्थ—साह्लाद = आनन्दसहित। विषाद = दुख। गुणवाद = कीर्तन।

भावार्थ—कभी हम अत्यन्त आनन्दित हो कर जोर जोर से हँसते हैं और कभी बहुत दुखी होकर रोते हैं। प्रेम के कारण हम हमेशा तुम्हारा कीर्तन करते रहते हैं परन्तु लोग भला हमें क्यों कहते हैं कि हम को पागलपन हो गया है॥

अब तो हमारा हृदय निराश होकर बहुत ही अधीर हो गया है, परन्तु यह नित्य ही न जाने क्यो सूखा जा रहा है। इन नेत्रों को कौन सी पीडा है जो यह सदा पानी बहाते रहते हैं? क्या इन को भी प्रेम का वह तीर लगा है?

सोच लो, कब से हम तुम्हारे दास बने हुए हैं। फिर तुम क्यों हमें बार बार निराश करते हो। बस तुम्ही बता दो कि तुम्हारा रहने का स्थान कहा है? क्या वहा प्रेम का प्रकाश भी नहीं पहुंचने पाता? हम कब से तुम्हारे गुण गा रहे हैं परन्तु क्या कभी तुम्हे भी हमारा ध्यान आया है। तुम्हीं बताओ तुम्हारा ठिकाना कहां है? वहा प्रेम की पहचान किस तरह होती है?

शब्दार्थ—संस्थान = ठिकाना। शास्त्रज्ञ = शास्त्र जानने वाला। अज्ञ = अनजान। महान = बड़े। भान = भास, ज्ञान। यदपि = यद्यपि। सहृदय = दुख समझने वाला। वियोग = विरह।

हे ज्ञान के निधि! बड़े बड़े शास्त्र जानने वाले जो भी कुछ जानते हो परन्तु उन को भी तुम्हारी बिल्कुल पहचान नहीं है। हम तो यह देख कर बड़े अनजान और मूढ बन गये हैं परन्तु खेद है तो भी मन मे तुम्हारा ज्ञान न हुआ॥ यद्यपि हमारा अभी तक तुम से परिचय नहीं हुआ है परन्तु तो भी हमारा यही विचार है कि तुम दूसरों के दुख को जानने वाले और सरस (दयालु) हो। अब हम से यह भारी विरह का कष्ट

भी फिर जीवित हैं ॥ खेद है कि हमारा प्रत्येक अंग अब ढीला पड गया है, अब तो हम केवल दुख उठाने के लिये ही जीते हैं। जब हम से अपने दुख सहन नहीं किये जाते तब हम अपने जी को रो कर के बहलाते हैं। (केवल रोना ही जानते हैं) यह प्राण तो हमेशा निकलने के लिये ही व्याकुल रहते हैं, हम उन्हे किस तरह समझावे और किस तरह रोक रक्खें॥ हमे अपने इस दुखी जीवन मे किस तरह प्यार हो, हम को तो पेट भर के खाने को भी नहीं मिलता ॥

पृष्ठ १७४—कैसे हो हमारे मूढ पुत्रों की भलाई—

भावार्थ—हमारे मूर्ख पुत्रो का भला किस प्रकार हित हो, उनको तो अपने देश की भलाई का ज़रा भी विचार नहीं है। देश के गौरव का उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहता उन्हे तो अपनी (झूठी) बडाई की हमेशा धुन लगी रहती है।

अपने बाप दादों की सारी कमाई को नष्ट कर चुकने के बाद अब तो उनके लिए एक पाई की आमदनी भी कठिन हो गई है। हे दोस्त! घर की लडाई का हाल कुछ न पूछो, यहां तो नित्य भाई ही भाई की जड को उखाड़ने की धुन मे है।

जिन से सदा ही हम बडी बडी आशाएँ रखते हैं वे भी दुःख है कि अन्त मे निकम्मे ही निकलते हैं। जिन पर हमे अधिक से अधिक भरोसा होता है वे भी सदा बार बार हमे धोखा देते हैं। हमारे पुत्र आपस मे मिल कर नहीं रहते अपितु दिन-रात एक दूसरे से जलते रहते हैं। हमारे ऊपर शासन करने वाले अधिकारी हमारा भला चाहते हैं, परन्तु हम तो उनके संभालने पर भी नहीं संभलते।

हमारे प्यारे पुत्र भी हमारा साथ नहीं देते, ऐसी अवस्था मे

देश की भलाई कैसे हो सकती है जहां सदा ही सब कामों में ढिलाई (काम को देर से करने की आदत) दिखाई देती है। यहा नित्य ही हिन्दू धर्म मे अनेक पाप होते हैं और यहा के दूसरे धर्मों मे भी धर्म का सच्चा भाव नहीं है।

पृष्ठ १७६ देख कर हिन्दुओं की—

शब्दार्थ—दुधमुँहे—दूधपीने वाले (छोटे)। पुत्रियों= लड़कियो। जननी=मातायें। सपूत=श्रेष्ठ पुत्र। गृहदेवी= घर की मालकिन।

भावार्थ—हिन्दुओं के अनेक प्रकार के बुरे रीति-रिवाजों को देख कर हमारी आज की अवस्था को तुम भली भांति जान सकते हो। यहां छोटी आयु के दुधमुंहे बच्चो की शादियां हो जाती हैं। इस गिरे हुए समाज की दशा बहुत ही बुरी है। छोटी आयु की विधवाओं की दशा को तो हे मित्र! तुम पूछो ही नहीं। यह तो हमारे लिए बहुत ही शर्म की बात है। आज तो अपने सगे भाई भी अछूत कहलाने लगे हैं। जाति के जहाज के नष्ट होने का समय समीप आ पहुंचा है।

शोचनीय.........बन जाती है—

भावार्थ—हमारी लड़कियों की शोचनीय हालत (दुख देने वाली दशा) हमारे हृदय में और भी शोक पैदा करती है। अब यहां की मातायें श्रेष्ठ पुत्रों को नहीं पैदा करती। घर मे घर की देवी (सच्चरित्र और प्रधान स्त्री) का भी आदर नहीं होता। मलिन मछलियो की तरह जाल में फँसी हुई बेचारी औरतों को देख कर तो आंख भर-भर कर के आती है। (आंखों में आँसू भर जाते हैं) अगर इन स्त्रियों

की दशा नहीं सुधरती है तो हमारे समाज की सब इज्जत ही चली जाती है ॥

क्या क्या बतलावें—

शब्दार्थ—हीनता = पतित भाव । सन्तति = सन्तान । कराल = भयंकर । कसाला = कष्ठ । गात = शरीर । उजाला = प्रकाश ।

हे मुनियों में श्रेष्ठ नारद ! हम तुम्हें क्या क्या बतावें, तुम स्वयं ही देख लो कि काल ने हमारा क्या बुरा हाल कर दिया है। बदकिस्मत सन्तान की गिरावट को देख कर हमारे हृदय में भयंकर ज्वाला जलती है। क्या करें यह कष्ट किसी प्रकार भी नहीं मिटता । दुःख और शोक ने हमारे शरीर को काला कर दिया है । मुसीबतों की ऐसी घोर घटा छाई है कि मुझे किसी ओर भी प्रकाश नहीं दिखाई देता।

ग्राम

पृष्ठ १७७ प्रकृति सुन्दरी की गोदी में ·····

शब्दार्थ—शिशु = बालक । कोलाहलमय = शोरगुल से भरे हुए । प्रतिनिधि = दूत । आख्यान = कथा । स्रोत = झरना ।

भावार्थ—प्रकृति रूपी सुन्दर स्त्री की गोद में एक बालक की तरह खेलते हुए तुम कौन हो ? शोर गुल से भरे हुए इस जगत को तुम आश्चर्य से चुप हो कर देखते हो । तुम संसार के भोलेपन के प्रतिनिधि और स्वाभाविक सरलता की कहानी हो (अर्थात् बहुत भोले और सीधे हो) । तुम मनुष्य जीवन के निर्मल झरने हो

और परमात्मा की दयामय रचना हो।

छिपा मही के मृदु अंचल में .....

शब्दार्थ—मही = पृथ्वी। ललना = स्त्री। लालित = पाला-हुआ। पराग = धूलि।

भावार्थ—तुम पृथ्वी के कोमल आंचल में छिपे हुए संसार के अनुराग की मूर्ति हो। यह संसार दूसरों के लिये त्याग (आत्म-समर्पण) करना तुम से ही सीखता है। तुम सीधी-सादी औरतों से पाले गये संसार के फूलों की पवित्र धूल हो, तुम किसानों के श्रम-रूपी जल से सींचे गये संसार के एक छोटे-से बाग हो॥

लघु हो कर भी तू विशाल है ...

शब्दार्थ—लघु = छोटा। गर्व = अभिमान। पंकज = कमल। पंक = कीचड़। भव्य-भाव = सुन्दर विचार। भण्डार = खजाना। आगार = घर। पारावार = समुद्र।

भावार्थ—छोटे होते हुए भी तुम महान् हो और तुम्हें लेश मात्र भी अभिमान नहीं है। संसार रूपी तालाब के (कीचड़ उत्पन्न) कमल होते हुए भी तुम उस के मैले कीचड़ से दूर रहते हो।

तुम सुन्दर विचारों के अलौकिक खजाने हो। तुम सच्चाई के घर हो। तुम प्रेम के सागर और दुःख तथा दीनता के आधार हो।

होकर भी—

शब्दार्थ—स्वावलम्ब = अपने बल पर खड़े रहना। समुचित = योग्य। सोम = चन्द्रमा।

भावार्थ—तुम असभ्य होकर भी संसार की सभ्यता के

ार हो। दुनिया तुम से ही अपने बल पर स्थित रहता
ती है। तुम्हारे ही [illegible] गानों में नित्य निकलते
तुम पृथ्वी के पलंग पर बैठ कर चांद के ठंडे अमृत
पान करते हो ॥

[illegible]—

शब्दार्थ—क्रीडास्थल = खेलने की जगह । जगती = पृथ्वी ।
तुल = विशाल । क्षुधा = भूख । त्राण = रक्षा । निकेतन = घर ।
मता = सहन शक्ति । अवनी = जमीन । अधिवास = उत्तम घर ।
म = आकाश । लोल = चञ्चल । वारिनिधि = सागर । मीन =
ली । चितवन = नजर । सन्तत = हमेशा । आदिक = इत्यादि ।
हार = भेट । मधुमय = मधुर । ज्योतिष्मान् = प्रकाशमान ।
यार = वायु (यार .. .. बयार—अर्थात दुनिया की अत्या-
ारपूर्ण अशुद्ध नीति) । विश्ववाटिका = ससार रूपी फुलवाडी ।
स्तित्व = सत्ता ।

भावार्थ—भोले बालको के खेलने के स्थान तथा संसार
क किसानो के तुम ही त्राण (आधार) हो। तुम ही इस महान्
संसार को अन्न देकर उस की भूख से रक्षा करते हो ।
तुम सच्चे बहादुर होकर भी ईश्वर से सदा डरते हो । यद्यपि
तुम दीन-हीन हो फिर भी लोभ और चिन्ता से दूर रहते हो ।

सच्ची मनुष्ता और प्रेम के निवास स्थान तुम ही हो ।
संसार की सब से पहली सभ्यता का इतिहास तुम से ही
शुरू होता है । भ्रातृ-भाव, सब के साथ समान व्यवहार और
सहिष्णुता (सहन करने की शक्ति) इन के रहने के
स्थान पृथ्वी भर मे तुम ही हो । तुम अपने मे ही मग्न हो ।

तुम आकाश मे छोटे से तारे के समान छिपे हुए हो। तुम चंचल लहरों से क्षुब्ध हुए संसार सागर की मीन (मछली) हो।

विकाररहित रह कर तुम अपनी भोली दृष्टि से संसार को देखते हो। तुम्हारा हृदय-द्वार सब के लिए सदा खुला रहता है। दया, क्षमा और प्रेम आदि तुम्हारे रत्नों के अटूट भण्डार हैं। शुद्ध जल और वायु ही तुम्हारे जीवन की पवित्र भेंट है।

तुम बल-पुरुषार्थ से भरपूर रहते हुए भी छल से दूर रहते हो। संसार में तुम्हारे जीवन के धन किसान और मजदूर ही हैं। कोयल तुम्हे मादक वसन्त का सन्देश सुनाती है। खेतों में उग उग कर पौधे तुम्हें उपदेश देते हैं।

यद्यपि संसार को चकाचौंध मे डालने वाला तेज प्रकाश तुम मे नहीं है, तो भी तुम मिट्टी के दियो से प्रकाशमान रहते हो। बाहरी दुनिया की तेज हवा को तुम कभी नहीं सह सकते। तुम्हे अपना ही भोला भाला ससार प्राणो के समान सदा प्रिय है।

यद्यपि तुम्हे कांटे चुभते रहते हैं और तुम पर धूल उड़ती रहती है तो भी ससार रूपी उद्यान के कोमल फूल तुम मैले नहीं होते। (शहरियो द्वारा निन्दा और हंसी किये जाने पर भी अपने मन मे बुरा नहीं मानते) अपने व्यक्तित्व को संसार मे सब से अलग रख कर तुम हमेशा ही अपने छोटे से जीवन को सफल बनाए रखते हो।

सुभद्राकुमारी चौहान

जीवन-परिचय

श्रीमती चौहान का जन्म प्रयाग में सम्वत् १९६१ श्रावण शुक्ला पञ्चमी के दिन हुआ। आप के पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह है। आप ने स्थानीय क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में शिक्षा प्राप्त की।

आप का विवाह खँडवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० से हुआ। आप देश की मुख्य सेविकाओं में से हैं।

हिन्दी साहित्य की स्त्री कवियों में आप का सर्वोच्च स्थान है। आप की भाषा सरल तथा भावपूर्ण होती है। आपकी कविताए 'मुकुल' नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल आप जबलपुर में रहती हैं।

'झांसी की रानी' शीर्षक वाली कविता ही श्रीमती चौहान को अमर रखने के लिए पर्याप्त है।

स्वागत

पृष्ठ १८३—शब्दार्थ—प्रमुदित=प्रसन्न। गुरुता=बड़प्पन। अनुगामी=आज्ञापालक।

भावार्थ—ऐ मेरे देश! तुम आ जाओ, मैं तुम्हारा स्वागत करती हूं। तुम को देख कर आज मेरा मन दुगुना प्रसन्न

ना। सना = भरा हुआ, लिप्त।

भावार्थ—यहां (जलियांवाला बाग में) जो कोयल नहीं ...कर शोर बोलते हैं, यहां पर काले काले कीड़े ही भौंरों का भ्रम ...ा करते हैं। यहां पर कलियां भी आधी खिली हुई हैं और ...टों से मिली हुई हैं। यहां के पौधे और फूल सूखे पड़े हैं या ...ल गये हैं। सुगन्धरहित पुष्प-धूल पत्ते के समान हो गई है। ...हा आज तो यह प्यारा बाग खून से भरा हुआ है। हे प्यारे ...तुराज वसन्त! तुम आ जाओ परन्तु धीरे धीरे आना क्योंकि ...ह दुख का स्थान है इसलिये यहां शोर नहीं करना॥

वायु चले पर मन्द······

शब्दार्थ—गुंजार = गुन् गुन् शब्द। उपहार = भेंट। अश्रु = ...ांसू।

भावार्थ—यहां हवा बेशक चले, परन्तु हे ऋतुराज! उसे ...ीमी चाल से चलाना। हमारी दुःख-भरी आहें साथ न उड़ा ...ा जाना। यहां यदि कोयल गावे तो रोने के ही गीत गावे। भौंरे ...ूंजें तो दुःख की ही कहानी सुनावें। तुम अपने साथ फूलों को ...ो लाना परन्तु वे अधिक सजावट वाले न हों, उन में सुगन्धि भी ...ंद हो और वे ओस (आंसू) से गीले हुए हों। परन्तु तुम यहां ...ा कर उपहार (भेंट) देने के विचार न प्रकट करना। यहां ...लिदान होने वालों की पवित्र स्मृति में केवल पूजा के लिये ...छ फूल डाल देना॥ यहां पर बेचारे नन्हे नन्हे बालक ...ोली खा कर मर गये हैं अतएव थोड़ी कलियां उन के ...लिए गिरा देना। आशाओं से भरे हुए हृदय यहीं पर विदीर्ण (टुकड़े) हुए हैं और सदा के लिये अपने प्यारे कुटुम्ब

तया देश से अलग हो गये हैं अतएव तुम कुछ अधखिली कलिकाओं को यहां पर चढ़ा देना और उन (शहीद व्यक्तियों) की याद कर के ओस के आँसू बहा देना। यहां पर बेचारे बूढे आदमी गोली खा कर तड़प तड़प कर मर गये हैं, तुम यहां पर आ कर कुछ सूखे सूखे फूल डाल देना। तुम यह सब काम करना, परन्तु बहुत धीरे धीरे करना, क्योंकि यह बाग़ शोक करने का स्थान है अतएव यहां शोर न मचाना॥

—o—
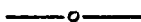
झांसी की रानी (लक्ष्मीबाई)

यह कानपुर (बिठूर) के सरदार बाजीराव पेशवा की लड़की थी। पति के मरने पर यह झांसी के सिंहासन पर बैठी थी। इस ने बड़ी योग्यता से राज्य किया। इसका कोई पुत्र न था, अतएव इस ने किसी को गोद लेना चाहा, परन्तु अंग्रेजी सरकार ने न माना। १८५७ में जब गदर हुआ तब उस मे इस ने भी भाग लिया था और बड़ी वीरता से लड़ी थी परन्तु अन्त मे मारी गई थी। भारतवर्ष के इतिहास मे इस वीरांगना का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। कवयित्री ने इसी वीरता की मूर्ति को अपनी कविता अर्पण की है॥

पृष्ठ १८५ सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने—

शब्दार्थ—भृकुटि=भौंहें। तानी=खींची। फिरंगी=अंग्रेज। सत्तावन= सन् १८५७ ई०। बुन्देले=बुन्देलखण्ड के रहने वाले। गाथाये=कथायें।

भावार्थ—राजाओं के तख्त कांप रहे थे, राजा लोगों ने

[illegible] तानी थी। बूढ़े भारत में भी फिर से नई जवानी का जोश चढ़ा रहा था। खोई हुई स्वतन्त्रता का मूल्य सब जान चुके थे। अंग्रेजों को भगाने का सब लोग मन में निश्चय कर चुके थे। सन १८५७ ई० में वही पुरानी तलवार चमकने लगी थी। बुन्देलखण्ड के रहने वाले हरबोलों के मुख से हमने कहानी सुनी थी कि उस समय वह झांसी की वीर रानी महारानी लक्ष्मीबाई खूब वीरता से लड़ी थी। वह कानपुर के रहने वाले नाना (नाना फड़नवीस) की मुँहबोली (धर्म सम्बध से बनाई) प्यारी बहिन थी। उस का नाम लक्ष्मीबाई था और वह अपने पिता की इकलौती सन्तान थी। वह नाना साहिब के साथी ही पढ़ती और खेलती थी। बल्लम, ढाल, तलवार और कटार बस यही उस की सखिया थीं। (इन के साथ खेलती थी) वीर शिवाजी की कहानिया उस को जबानी याद थीं। बुन्देलखण्ड के रहने वाले—

पृष्ठ १८६ लक्ष्मी थी या दुर्गा थी—

शब्दार्थ—पुलकित = रोमाञ्चयुक्त, प्रसन्न। वार = प्रहार। व्यूह = युद्ध में सेना के भिन्न २ मोर्चे लगाना जैसे'चक्रव्यूह'इत्यादि। सैन्य = सेना। दुर्ग = किला। महाराष्ट्र = मरहटे। वैभव = धन, दौलत। चित्रा = चित्राङ्गदा, यह मणिपुर के राजा की पुत्री थी जिसे अर्जुन ने अपने निर्वासनकाल में व्याहा था, इसी से बभ्रुवाहन पैदा हुआ था। सुभट = उत्तम सैनिक। विरुदावलि = यश-गाथा। भवानी = पार्वती।

भावार्थ—वह लक्ष्मी थी, दुर्गा थी, अथवा वीरता का साक्षात् अवतार थी। उस की तलवारों के वार को देख

कर मराठे लोग खूब प्रसन्न होते थे। बनावटी युद्ध करना, व्यूह की रचना करना, शिकार खेलना, सेना को जमा करना और किलों को तोड़ना, यही उसके प्यारे खेल थे। मरहटे कुल की देवी 'दुर्गा' ही उस की इष्ट देवी थी। बुन्देलखण्ड के रहने वाले ... ... । अपार ऐश्वर्य के साथ मानो शूरवीरता का सम्बन्ध हो गया अर्थात् अपार धन के स्वामी राजकुमार के साथ उस वीर रमणी का विवाह हुआ। विवाह के बाद लक्ष्मीबाई झासी में रानी बन कर आई। राजमहलों मे बधाइयां बजने लगीं और झांसी में आनन्द मनाया जाने लगा । वह लक्ष्मीबाई वीर बुन्देलो की साक्षात् कीर्ति गाथा बनकर झांसी मे आई। ऐसा प्रतीत होता था मानो चित्रांगदा ने अर्जुन को पाया हो अथवा शंकर से पार्वती मिल गई हो ॥

उदित हुआ सौभाग्य मुदित—

शब्दार्थ—विधि = दैव । ह्या = शर्म । डलहौजी = लार्ड डलहौजी ।

भावार्थ—अच्छे भाग्य जाग गये । आनन्दपूर्ण महलों में प्रकाश छा गया। परन्तु समय का फेर धीरे धीरे काले बादलो को घेर लाया। तीर चलाने के आदी बने हुए उस रानी के हाथों में भला चूडिया कैसे शोभा देतीं। रानी विधवा हो गई। खेद है कि विधाता को भी शर्म (तरस) न आई। राजाराम (लक्ष्मीबाई के पति) पुत्र रहित (१८५३ ई० में) मर गये, अत. रानी शोक से व्याकुल हो गई । बुन्देलखण्ड झांसी का दीपक बुझ गया और लार्ड डलहौजी (यह सन् १८४८ ई० से १८५६ ई० तक भारत के गवर्नर रहे थे)

प्रसन्न हो गया। उसने राज्य को छीनने के लिये यह अच्छा मौका पाया। शीघ्र ही अपनी सेनाओं को भेज कर झांसी को अपने अधिकार में कर लिया। अंग्रेजी सरकार लावारिस का वारिस बन कर झांसी में आ गई। रानी ने अपने आंसू भरे नेत्रों से देखा कि झांसी अब दूसरों के अधिकार में चली गई।

पृष्ठ १८७ अनुनय विनय नहीं सुनता है—

शब्दार्थ—विकट = कठोर। काया = शरीर, चाल। छिनी = छीन ली। ब्रह्म = वर्मा। विसात = गिनती।

भावार्थ—अत्यधिक नम्रता कठोर शासकों की चालबाजी के सामने कुछ नहीं कर सकती। जब यह (अंग्रेजी शासन) भारतवर्ष में आया था तो उस समय केवल व्यापार करना ही इस का उद्देश्य था, फिर लार्ड डलहौजी ने पांव फैलाये और अब तो इस का सारा ढांचा ही बदल गया। डलहौजी ने तो राजाओं तथा नव्वाबों को भी पैर से ठुकरा दिया (सब लावारिस राजाओं और नव्वाबों की रियासतें छीन लीं) रानी अब एक दासी बन गई। और वहीं रानी अब महारानी थी। बुन्देलखण्ड के रहने वाले ....।

छिनी राजधानी ....।

भारत की राजधानी देहली छीनी जा चुकी थी और लखनऊ भी बातों ही बातों में युद्ध के बिना ही ले लिया गया था। पेशवा को 'बिठूर' में कैद कर दिया गया था और नागपुर पर भी वार हो चुका था। उदयपुर, तंजौर, सितारा और करनाटक की तो गिनती ही क्या थी जब कि सिन्ध,

पंजाब और ब्रह्मा जैसों पर भी वज्रपात हो चुका था। बंगाल, मद्रास आदि शेष प्रान्तों की कहानी भी इसी ढंग की थी अर्थात् उन पर भी अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया था। बुन्देलखण्ड के रहने वाले ... . ।

रानी रोई रनवासो में ......

शब्दार्थ—रनवास = अन्त: पुर, रानियों के रहने के महल। बेजार = परेशान। सरे आम = खुले तौर पर। विषम = विकट। वेदना = पीड़ा। पुरखों = पूर्व पुरुषों। रणचण्डी = युद्ध रूपी दुर्गा। आह्वान = निमन्त्रण।

भावर्थ—रानियां महलों मे रो पड़ीं और बेगमें चिन्ता से परेशान हो गई थीं। उन के भूषण और वस्त्र कलकत्ता के बाजारों में बिक रहे थे। अंग्रेजी अखबारों में खुले तौर से नीलामी समाचार छपते थे कि—नागपुर के जेवर लेलो और लखनऊ के नौलाख रुपये के हार खरीदो इत्यादि। (नागपुर और लखनऊ मे गदर के समय खूब लूट मार मची थी।) अभी तक परदे की इज़्ज़त थी, अब वह भी विदेशी अंग्रेज़ों के हाथ बिक गई। (अंग्रेज़ो ने हिन्दू एव मुसलमान अबलाओं पर अत्याचार किया) ॥

साधारण गृहस्थो पर घोर पीड़ा छाई हुई थी और महलों में अपमान की ज्वाला जल रही थी। बहादुर सिपाहियों के मन में अपने पूर्व पुरुषों (भारतीय महापुरुषों) का गौरव मौजूद था (क्योंकि आंदोलन के प्रधान संचालक पहले सिपाही लोग ही थे)। धुन्दूपंत पेशवा (नाना फड़नवीस का दूसरा नाम है, सब सामग्री तय्यार कर रहा था। उस की सुन्दर वहिन (महा-

रानी लक्ष्मीबाई) ने युद्ध की घोषणा कर दी, फलतः युद्ध का प्रारम्भ हो गया क्योंकि उन्हें तो बुझी हुई ज्योति को जगाना था (कायरता की नींद में पड़े हुए भारतीयों को जगाना था)। बुंदेले हरबोलों से हमने कहानी सुनी था कि वह मर्दानी झाँसी वाली रानी खूब लड़ी थी ॥

पँखुरियाँ

(१) शब्दार्थ—आरसी = शीशा।

भावार्थ—मूर्ख पुरुष को गुणों की कथा बांचने के लिये पुस्तक देना मानो अन्धे के हाथ में शीशा देना है। जैसे अन्धा निर्मल दर्पण में कुछ नहीं देख सकता, उसी तरह मूर्ख भी पुस्तक से लाभ नहीं उठा सकता ॥

(२) शब्दार्थ—बांके = टेढ़े ।

भावार्थ—संसार में अत्यन्त सीधा भी नहीं रहना चाहिये (क्योंकि सीधे को ही दुख मिलता है)। इस बात का प्रमाण देखना हो तो जंगल में जा कर देखो कि किस तरह सीधे वृक्ष काटे जाते हैं और टेढ़े बच जाते हैं ॥

(३) शब्दार्थ—लुंग = शिखा, ज्वाला। नेह = प्रेम।

भावार्थ—अग्नि की लपटें सहन करना आसान है और तलवार की धार को सहना भी सरल है, परन्तु एक रस (अर्थात्, एक ही भाव से) रह कर प्रेम को निभाना बड़ा कठिन है ।

(४) अधिक सुन्दरता के कारण सीता-हरण हुआ, अति अभिमान के कारण रावण मारा गया। अधिक दान देने से ही

राजा बलि बाधा गया। अति को छोड़ने में ही सब तरह भलाई है।

(५) शब्दार्थ—केरा = का।

भावार्थ—केवल आसन मारने (योग क्रिया इत्यादि करने) से क्या लाभ यदि मन की आशा न मिटी। जैसे तेली का बैल घर पर ही पचास कोस की यात्रा करता है। (अर्थात् जिस तरह कोल्हू का बैल कोल्हू के चारों तरफ घूमता रहता है और उस को बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं होता उसी प्रकार वह मनुष्य भी है जो आसनों में ही लगा रहे परन्तु मन के संकल्पों को न मिटा सके।)

(६) शब्दार्थ—आव = कांति। आदर = मान, इज्जत। सनेहि = स्नेह।

जिस समय मनुष्य हाथ पसार कर किसी से "मुझे कुछ दो" इस प्रकार कहता है तभी उसके मुख की कांति, आदर और नेत्रों से स्नेह के भाव जाते रहते हैं।

(७) सौर = ओढ़ने की चादर।

अपनी शक्ति को विचार कर के ही शक्ति अनुसार काम करने चाहिएँ। उतने ही पैर फैलाने चाहिये जितनी लम्बी ओढ़ने की चादर हो।

(८) शब्दार्थ—डार = डाल। मूर = मूल, जड़।

भावार्थ—बबूल की डाल, पत्तियाँ और जड़ किसी भी काम के नहीं होते, रहीम कहते हैं कि क्रूर बबूल और वृक्षों की उन्नति को भी रोकता है (जिस प्रकार बबूल न तो स्वयं पथिकों को छाया इत्यादि से विश्राम देता है और न ही दूसरे वृक्षों को अपने पास उगने देता है ठीक इसी प्रकार दुष्ट मनुष्य भी होते हैं)॥

(९) राष्ट्र की ओर से राष्ट्र में (देश में) रहने वालों के लिये यही संदेश है कि अपनी भाषा अच्छी है, अपना देश सब से बढ़कर है और अपनी जो भी कुछ वस्तु है वह सब भली ही है।

(१०) शब्दार्थ—जुआरी = जुआ खेलने वाला। तस्करी = चोर। अमिर = धनी। बेहाल = व्याकुल (दुखी)।

लखपति और बालक, जुआरी, चोर, अमीर और बेहाल— इतने प्रकार के लोगों से मित्रता नहीं करनी चाहिये।

(११) शब्दार्थ—काजल अपने कालेपन को, मोती सफेदी को, दुष्ट पुरुष बुरे व्यवहार को और सत्पुरुष हेत (प्रेम व्यवहार) को नहीं छोड़ता॥

(१२) विद्वान मनुष्यों के दिन साहित्य की चर्चा (पढ़ने लिखने) में ही बीता करते हैं और मूर्ख मनुष्य दूसरों के साथ झगड़ने और निन्दा करने में ही अपना समय बिता देते है।

(१३) कबीर जी कहते हैं कि कभी (अपनी सम्पत्ति का) अभिमान नहीं करना चाहिये और न निर्धनो पर हँसना ही चाहिये। अभी तो यह नौका ससार-सागर में ही है, क्या जाने कब कैसी अवस्था हो जाये।

(१४) शब्दार्थ—तोय = जल।

भावार्थ—ऐसा प्रयत्न क्यो किया जाय जिस के करने से कुछ फल न निकले। यदि पर्वत पर कुआं खोदा जाय तो पानी कैसे निकल सकता है ? (असम्भव बातों के प्रयत्न मे पड़ना अच्छा नहीं होता)॥

(१५) शब्दार्थ—कीच = कीचड़। उछरि = उछल कर के।

भावार्थ—नीच मनुष्यों को कुछ कह कर नहीं छेड़ना चाहिये। उनकी संगति अच्छी नहीं। पत्थर को अगर कीचड़ मे फेंकते हैं तो कीचड उछल कर के हमारे शरीर को ही मैला कर देता है॥

(१६) संसार मे गौओ, हाथियों, घोड़ों और अनेक प्रकार के रत्नों का अपार धन है। परन्तु जिस समय मनुष्य के मन मे सन्तोष रूपी धन समा जाता है, सब धन उस के सामने धूल के समान हो जाते हैं।

(१७) चारों वेदो और छहों शास्त्रों में यही दो बातें मिलती हैं। (१) दूसरों को दुख देने से मनुष्य को स्वयं दुख उठाना पड़ता है और (२) दूसरो को सुखी करने से वह आप भी सुखी होता है।

(१८) शब्दार्थ—विषया=विषय भोग। लिपटात=लिप्त, लीन, लट्टू होता है। वमन=कै, उलटी। स्वान=कुत्ता।

भावार्थ—जिन सांसारिक उपभोगों को संत पुरुष छोड़ देते हैं, अज्ञानी लोग उन्हीं मे ही फँसे रहते हैं। जैसे मनुष्य के वमन (कै, उलटी) को कुत्ता स्वाद से खाता है।

(१९) शब्दार्थ—मदिरा=शराब। कलाली=शराब बेचने वाली।

भावार्थ—जिस के साथ रहने से दोष लगे उस का संग छोड़ना चाहिए। दूध अगर कलालिन के हाथ मे हो तो उसे सभी मद्य ही समझते हैं॥

(२०) भावार्थ—जो तुम्हारे साथ कांटे बोयेगा उस के साथ तुम फूल बोना, तुम को फूल ही रहेगा और उस को त्रिशूल (३ नोक वाला आयुध) के समान होगा। (यद्यपि कोई तुम्हारे साथ दुष्ट व्यवहार करे परन्तु तुम उस के साथ अच्छा

बर्ताव करो. क्योंकि दुष्ट. को तो दुष्टता का फल अवश्य ही मिलेगा और तुम को अपनी करनी का अच्छा फल मिलेगा।)

(२१) कुत्ते की पूँछ किस काम की जिस से न शरीर ढक सकता है, न मच्छर ही उड सकते हैं। और सूम का धन भी किस काम का, जिस से कुल की लज्जा की रक्षा न हो सके।

(२२) शब्दार्थ—परिहरु=छोडो।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि मीठे वचनों से सब ओर सुख ही सुख होता है। मधुर भाषण दूसरों को वश में करने के लिये मन्त्र के समान है अत. कडवे बोल नहीं बोलने चाहिये।

(२३) शब्दार्थ-तरुवर=वृक्ष। पानि=पानी। सुजानि=सज्जन।

भावार्थ—वृक्ष अपने फलों को अपने आप नहीं खाते, तालाब अपने जल को स्वयं नहीं पीते। रहीम जी कहते हैं कि सज्जन लोग दूसरो की भलाई के लिये ही धन संग्रह करते हैं।

(२४) शब्दार्थ—सुत=पुत्र। जौन=जो। मधि=बीच मे। बक=बगला। तौन=वह॥

भावार्थ—वे माता पिता अपनी सन्तान के शत्रु हैं जो उन्हे अच्छी शिक्षा नही देते। उन की सन्तान सभा में इसी तरह शोभा नही पावेगी जिस प्रकार हंसों मे कौआ अच्छा नही लगता।

(२५) शब्दार्थ—दर्पण=आइना। दौर=विचार।

भावार्थ—दुष्ट पुरुष की चाल हमेशा आइने की तरह होती है। सामने कुछ है और विमुख (सामने से दूर) होने पर और ही कुछ है। (जिस तरह दर्पण को यदि सामने की ओर से देखें तो खूब चमकता हुआ और निर्मल होता है, परन्तु यदि पीछे की ओर

से देखे तो कुछ भी न दिखाई देगा। ठीक यही दशा दुष्ट पुरुष की भी होती है)॥

(२६) शब्दार्थ—सौ बेर = सौ बार। सेत = सफेद।

भावार्थ—दुष्ट मनुष्य को कितना ही सुख क्यों न दिया जाय, वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता—जैसे सैकड़ों बार धोने पर भी काजल कभी सफेद नहीं होता।

(२७) शब्दार्थ—द्रव्यहीन = धनरहित। लखै = देखता है।

धनरहित दीन आदमी सब की ओर देखता है, परन्तु उस को कोई भी नहीं देखता। रहीम जी कहते हैं कि जो आदमी दीनों की ओर देखता है—उन की सहायता करता है, वह "दीनबन्धु भगवान" के समान है।

(२८) शब्दार्थ—खल = दुष्ट। रुधिर = खून। पय = दूध। पयोधर = स्तन। जोंक = जोक।

भावार्थ—दुष्ट पुरुष तो दोष को ही प्रसन्न हो कर ग्रहण करते हैं, गुण को नहीं लेते। अगर स्तनों पर जोंक लगाई जाती है तो वह दूध न पी कर खून ही पीती है॥

(२९) शब्दार्थ—पंक = कीचड़। लघु = छोटा या गरीब। अघाय = तृप्त हो कर। उदधि = समुद्र।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि कीचड़ से भरा हुआ जल ही धन्य है जिस को छोटे-छोटे जीव पी कर तृप्त होते हैं, समुद्र की कौनसी बड़ाई है जहाँ से सभी प्यासे ही लौटते हैं। (यदि कोई धनवान है परन्तु उस से किसी का उपकार नहीं होता है तो उस पुरुष से तो वह साधारण आदमी ही भला है जो दूसरों का उपकार करता है)॥

(३०) सब से मीठा बोलना और दूसरों का उपकार करना इस संसार में यही दो काम आने वाली तत्व की बातें हैं।

(३१) शब्दार्थ—निशि-दीपक=रात का दिया। भुवन=लोक।

भावार्थ—रात का दीपक (शोभा बढ़ाने वाला) चन्द्रमा है। दिन की शोभा बढ़ाने वाला सूर्य है। तीनों लोकों का दीपक धर्म है और कुल की शोभा बढ़ाने वाला पुत्र है।

(३२) शब्दार्थ—विटप=वृक्ष। भुजंग=सांप।

भावार्थ—नीच पुरुष सत्पुरुषों के संग रह कर भी अपनी नीचता को नहीं छोड़ता। तुलसीदास कहते हैं कि चन्दन के वृक्ष पर बसता हुआ भी सांप जहर को नहीं छोड़ता।

३३ शब्दार्थ—ग्रीष्म=गर्मी। सुहात=अच्छी लगती है।
भावार्थ—प्रिय बातें भी समय के अनुसार अप्रिय लगती हैं, जैसे सर्दी में धूप अच्छी लगती है परन्तु गर्मी में अच्छी नहीं लगती॥

(३४) पाहन=पत्थर। पहाड़=पर्वत। चाकी=चक्की।
भावार्थ—पत्थर की पूजा करने से यदि भगवान् मिलते हों तो मैं पहाड़ की पूजा करूं। उस पत्थर से तो यह चक्की ही भली है जिसके पीसे हुए को संसार खा कर तृप्त होता है।

(३५) शब्दार्थ—द्रव्य=धन। उलीचिये=बाहर फेंकिये।
भावार्थ—यदि नाव में पानी भर जाय और घर में धन आ जाय तो उसको दोनों हाथों से बाहर फेंकना चाहिये (दान करना चाहिये) यही सब गुणी लोग कहते हैं।

(३६) - शब्दार्थ—विवेक = विचार।

भावार्थ—जब विचार की आंख फूट जाती है, (अज्ञान छा जाता है) तब सन्त या दुर्जन में अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। जिसके साथ दस बीस आदमियों की टोली होती है उसी को महन्त कहा जाता है। (अर्थात् अज्ञानी लोग गुणी पुरुषों को नहीं मानते हैं, सिर्फ आडम्बर वालों को पूजते हैं।)

(३७) शब्दार्थ—सिख=उपदेश। हिये = हृदय मे। भेषज = दवाई। ताप = ज्वर।

भावार्थ—उपदेश (शिक्षा) से युक्त वाक्य सदा बुरे जान पड़ते हैं। तुम स्वयं हृदय से विचार करो, कि कड़वी दवाई पीने के बिना शरीर का बुखार नहीं हटता।

(३८) शब्दार्थ—उपाव = उपाय।

भावार्थ—मन, मोती, दूध तथा रस (शर्बत) इनका यह स्वभाव है कि अगर एक बार टूट गये या फट गये तो फिर करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं मिलते॥

(३९) शब्दार्थ—शुक = तोता। सारिक = मैना। काग = कौआ।

भावार्थ—गुणों से ही मान होता है, गुणों बिना नहीं। तोता और मैना को सब लोग पालते हैं, परन्तु कौए को कोई भी नहीं रखता॥

(४०) शब्दार्थ—भविनव्यता = होनहार।

भावार्थ—रहीम कहता है कि अगर होनहार मनुष्य के अपने वश मे होती तो रामचन्द्र मृग वेषधारी मारीच के पीछे न दौड़ते और सीता रावण के साथ नहीं जाती॥ (भावी किसी के अधिकार में नहीं होता)॥

(४१)—शब्दार्थ—बड़ेन=बड़े लोग। डारि=फेंककर। तरवारि=तलवार॥

भावार्थ—हे रहीम! बड़ों को देख कर छोटी चीज को फेंक नहीं देना चाहिये। जहां पर सुई काम आती है वहां तलवार क्या कर सकती है? (साधारण पुरुष की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि छोटा आदमी भी ऐसा जगह काम आता है है जहां पर बड़ा आदमी कुछ नहीं कर सकता)॥

(४२)—शब्दार्थ—सूधी=सीधी। फरजी=शतरंज में वजीर नाम का मोहरा। मीर=बादशाह।

भावार्थ—रहीम कहता है कि टेढ़ेपन का फल देखो कि शतरंज के खेल में जो प्यादा होता है वह सीधी चाल चलता है और वजीर बन जाता है, (शतरंज में प्यादा सीधे खानों से ही चलता है) परन्तु फरजी टेढ़ी चाल चलने से राजा नहीं बन पाता है। (फरजी शतरंज में टेढे खानों से भी चल सकता है) अभिप्राय यह है कि कुटिलता से मनुष्य की उन्नति नहीं होती है।

(४३)—शब्दार्थ—वनिता=स्त्री।

भावार्थ—विद्या, बल, धन, सुन्दरता, यश, खान्दान, पुत्र, स्त्री और आदर ये सभी आसानी से मिल सकते हैं परन्तु "आत्म ज्ञान" मिलना बड़ा कठिन है।

(४४)—शब्दार्थ—शिल=पत्थर।

भावार्थ—सुख के माथे पत्थर पड़ जाय क्योंकि उससे भगवान् का नाम हृदय से चला जाता है। उस दुख की बलिहारी है जो प्रत्येक क्षण भगवान के नाम का जप करवाता है। (सुख

मे परमात्मा याद नही आते परन्तु दुख मे ही उनका स्मरण होता है । अतएव सुख से दुख ही सराहनीय है ।)

(४५) शब्दार्थ—आडम्बर=दिखावा । संग्रह=संचय ।

भावार्थ—दिखावे को छोड़ कर मन देकर गुणों का संचय करना चाहिये । देखो दूध न देने वाली गाय नहीं बिकती है, भले ही उस के गले में अच्छी अच्छी घंटियां बंधी हो ।

(४६) जहा मनुष्य की आवभगत न हो, आदर न हो और नेत्रो मे उस के लिये प्रेम के भाव न हों वहा यदि सुवर्ण की वर्षा होती हो, तो भी नहीं जाना चाहिये ।

(४७) शब्दार्थ—प्रभुता = बड़ाई । वेश्या = रण्डी । घटावती=कम करती है । बरस=वर्ष, आयु ।

भावार्थ-अपना बड़प्पन दिखाने के लिये प्रायः सभी लोग झूठी झूठी बाते बना कर कहते है—जैसे वेश्या अपनी आयु कम बताती है और साधु अपनी आयु बढ़ा कर ही बताता है ।

(४८) अच्छे आदमियो की होड़ (ईर्ष्या) करके नीच आदमी अच्छे नहीं बन जाया करते । क्या कभी कौआ भी राजहंस की चाल से चल सकता है ?

(४९) शब्दार्थ—रक्त=लाल । दिखन्त=दिखाई देता है ।

भावार्थ—उदय तथा अस्त के समय भी सूर्य लाल ही रहता है । सत्पुरुप सपत्ति तथा विपत्ति दोनो दशाओ मे एक रूप में ही रहते हैं ॥

(५०) शब्दार्थ—ओछी=हलकी । तूठो=प्रसन्न ।

भावार्थ—कुत्ते की बुरी संगति से दोनों तरह दुःख ही दुःख

है। क्रोध में आने पर तो वह पैर में काट लेता है और प्रसन्न होने पर मुख को चाट कर अपवित्र कर देता है। दुष्टों की संगति सब तरह से दुःख देती है।

श्री कन्हैयालाल तिवारी

संगठन

पृष्ठ १६४ राष्ट्रोन्नति का मन्त्र

शब्दार्थ—राष्ट्रोन्नति = राष्ट्र की उन्नति। तन्त्र=व्यवस्था। कोष = खजाना। विश्व = संसार। नियन्त्रण = अधिकार। सौहार्द = मित्रता। सत्व = सार। शुचि=पवित्रता। विमर्दन = कुचलना। ओज = तेज, बल। भू = पृथ्वी। शारदी=शरद काल का। रजनी = रात। भव्य = सुहावना। विधुवदनी = चन्द्रमुखी। वपु = शरीर। शूल = पीड़ा, त्रिशूल।

भावार्थ—हे संगठन! तू ही देश की उन्नति का मन्त्र और सुख की वृद्धि करने वाला तन्त्र है। तू ही जाति और देश का भाग्य है और सिद्धि तथा ऋद्धि (ऐश्वर्य) का खजाना है। कविता में मिठास और प्रमी का प्रेम है। भक्तों में भक्ति और अपने सेवक का (जो एकता का अनुगामी है) स्वामी (आराध्य देव) भी तू ही है॥ तू संसार को वश में करने के लिये शक्ति का एक बड़ा अवतार है। मित्रों में मित्रता और सुंदर पवित्रता का तू सार है॥ शत्रुओं को कुचलने (मारने) के लिये तू उसी का कठोर रूप धारण करता है। गुणियों में बड़ा गुण और भारत भूमि का तेज

का रूप और संसार के निर्माण की सचाई (जिस से चित्र बनाये जाते हैं) है। जगत् का स्वरूप यह 'संगठन' शक्ति ही है॥

——:o:——

बलवन्तसिंह सुमन

वीरयात्रा

कुहू निशा सम प्र० संचारी—

शब्दार्थ—कुहू निशा=अमावस्या की रात्रि। घुमक=घिरी थी। वारिदमाला=मेघो के समूह। चपला=बिजुली। श्वसिता= सांस लेती हुई। रजनी=रात्रि। व्याघ्र=बाघ। सत्व=प्राणी।

भावार्थ—अमावस्या की रात्रि के समान प्रलय करने वाला अञ्जन (अन्धकार) बरस रहा था। बादलो की घनघोर घटाएँ घिरी हुई थीं और मेघों के गर्जन का बडा शोर हो रहा था। मेघों की कनारो के बीच मे कभी कभी बिजली इस तरह चमक रही थी मानो टूटे हुए हृदय मे सांस लेती हुई अर्थात् बहुत ही धीमी आशा की झलक देख पडती हो॥ निष्ठुर आकाश बीच बीच मे आंसू गिरा देता था। इस तरह रात्रि का विरही जीवन हृदय को कम्पायमान करता था। आन्धी का अन्धकार अपने बल का परिचय देने के लिये इस तरह चढ गया था मानो एक भूखा बाघ किसी प्राणी का गला दबाने आया हो॥

महा शक्ति का अद्भुत—

शब्दार्थ—ताण्डव=एक नृत्य। जंगम=गमनशील, चर। बीहड=भयंकर। निवाला=ग्रास। साध=लालसा। पैज=

दुधारा=दो धार वाला अस्त्र, तलवार आदि।

भावार्थ—महाशक्ति (विश्व को चलाने वाली परमात्मा की शक्ति) का यह अजीब ताण्डव (शंकर का भयानक नृत्य ताण्डव कहलाता है) नृत्य आज प्रलय कर देगा और जड़ (स्थावर) तथा जगम सृष्टि को नष्ट करके संसार के प्राणों को हर लेगा। इस पर भी एक निराला बहादुर आशा का दीपक लिये हुए भयानक रास्ते से गुजर रहा था और मुसीबत का ग्रास बन रहा था॥ "मेरे प्राण भले ही चले जाये परन्तु मैं अपना कार्य पूरा करके ही छोड़ूंगा। यदि साक्षात मृत्यु भी सामने आकर मुझे रोके तो भी मै नहीं रुकूंगा।" यह उस वीर की प्रतिज्ञा थी और यही उसकी आन थी तथा उसका एक मात्र सहारा था। प्रकृति रूपी पिशाचिनी को वीर का यह व्रत मानो तलवार के समान खटकने लगा।

पृष्ठ १६६ पर प्रणवीर प्रणय सिञ्चित—

शब्दार्थ—प्रणय=स्नेह। अदम्य=न दबाया जा सकने वाला। वैभव=धन। आशुतोष=शंकर। भैरव=भयानक। अचर=जड़। सचर=चेतन। निशानाथ=चन्द्रमा। सुमन=फूल॥

भावार्थ—परन्तु प्रतिज्ञा पालने मे बहादुर और न दबाये जा सकने वाले उत्साह से भरा हुआ वह वीर प्रेम से सींचे हुए उस मार्ग मे, जहां पर कि अनेक विघ्नों के संकट पद पद पर रुकावट कर रहे थे—आगे ही बढ़ा जा रहा था और उस की जवानी के धन (अत्यन्त युवावस्था) से मस्त करने वाले रस के कन (बून्दें) टपक रहे थे। यह मालूम नहीं था कि प्रकृति की परीक्षा मृत्यु की विकराल हँसी थी। शंकर के भयानक नृत्य मे भी क्षणिकता भरी पड़ी थी (वह भी कुछ ही देर तक रहा)। वीर

पुरुष के हृदय को देख कर सारा ही विश्व एक क्षण में शान्त हो गया। प्रकृति रूपी नटिनी ने जड़ तथा चेतन में नये जीवन का संचार कर दिया। नीचे आकाश में तारों के साथ चन्द्रमा चमकने लगा। जीवन के इस मार्ग में फिर से आशा के दीपक चमकने लगे। आकाश से फूलों की वर्षा हुई और देवता लोग गीत गाने लगे। वह उस बहादुर नवयुवक की वीर यात्रा को देख कर मोहित हो रहे थे॥

——:o——

जयनाथ 'नलिन'

आँसू

नाहक तुमने उकसा दी—

शब्दार्थ—उकसा दी=जगा दी। अलसाई=मन्द पड़ी हुई। व्यथाएँ=पीड़ाएं। छलक=बाहर उमडना। आगन=सहन।

भावार्थ—तुम ने व्यर्थ में मेरी मन्द पड़ी हुई तथा सोई हुई पीड़ाओं को जगा दिया। मेरे पलकों पर कितनी ही करुण कहानियां उमड़ आई हैं।

मेरे दुख की कहानी तो चिरकाल से दुखित मेरे जीवन की साथिन है। कहीं आंखों में खारा पानी बन कर (आंसुओं का स्वाद नमकीन होता है) वह न जावे। कहीं मेरा मन इसी तरह आंसुओं की बूंदें बन कर बरस न जावे क्योंकि वह बेचारी पीड़ा मुझ जैसे सूने सहन कहां पा सकती है (मैं दुख का आश्रय बन गया हूं)॥

अञ्चल में लिये हुए—

शब्दार्थ—अञ्चल=कपड़ा। उत्पीड़न=दबाव, कष्ट। अलसता=

बुरा लगता ।

भावार्थ—मैं अपने आंचल मे न जाने कितने दुख लिए हुए हूँ । अब तो प्याले बिलकुल भर गये हैं और पीडा काँप रही है । मुझे तो सभी कुछ बुरा लगता है, परन्तु मैं रोना नहीं चाहती; क्योकि मैं उस (प्रियतम) के चित्रों की इन रेखाओं को कैसे धोना चाहूँगी। ऐ आँसू ! तुम पलकों से बाहर क्यों निकले? तुम इसी तरह सूख क्यो न जाओ? बहुत समय से दुखित मेरे जीवन की कामना को मत मिटा डालो। तुम हृदय से बहकर मत आना और नेत्रो से बाहर मत गिरना । ऐसा न हो कि मेरी यह पीडा समाप्त हो जाय। मुझे तुम व्यर्थ में मिटा मत देना। (पीडा का प्रकटस्वरूप आसुओं को बहाना होता है। रोने से हृदय का दुख कुछ कम हो जाता है। परन्तु कवि प्रिय विरह मे रह कर उस की स्मृति मे ही दुख सहना अच्छा मानता है और इस के लिये अपने आंसुओं से अनुरोध करता है कि यह बाहर बह न जायें और उस की वेदना को कम न करें) ॥

हरेन्द्रदेव नारायण

उषा

पृष्ठ १६८ गगन नन्दन की कली ·····

शब्दार्थ—नन्दन = पुत्र । शेफालिका = निर्गुण्डी का फूल (यह रंग मे लाल होता है)। तरणी = नाव । कुन्तल = बाल । सस्मित = कुछ मुस्कराहट के साथ। अलि = भौंरा। गुंजन =

गूँजना। मंजीर=पायजेब। तमिस्रा रात। आली=सखी।

भावार्थ—मैं आकाश-उद्यान की कली हूं। मैं गिर पड़ी। मैं शेफालिका हूँ। मैं मनोहर नाव के सदृश चली हूं। मेरे पीछे रात्रि रूपी मेरे केश हैं आश्चर्य तथा मुस्कराहट से भरे मेरे नेत्र हैं, भौंरों का गूँजना ही मेरे पाव के चञ्चल पायजेब है। मैं स्वप्न रूपी अलका नगरी की यक्षिणी हूँ और स्नेह को चिरकाल से पालन करने वाली हूं। मै न मरने वाली अभिसारिका (जो स्त्री रात मे शृंगार कर के अपने यार के पास जाती है) हूँ और उगते हुए सूर्यरूपी न हिलने वाले (प्रकाशमान) दीपक को ले कर के रात मे अपने प्रेम की मूर्ति को युगो से खोजती हूँ। (जिस तरह अभिसारिका रात मे प्रकाश ले कर अपने पिय की खोज मे निकलती है, इसी तरह उषा भी अरुणोदय के प्रकाश को ले कर प्रियतम को ढूँढती फिरती है) परन्तु ऐ सखी! मैने पियतम के चरणो को नही पाया, अतएव मै स्वप्न से पागल हुई एक बालिका हूं॥

पृष्ठ १६६ गन्धवह चिरगन्ध आकुल······

शब्दार्थ—गन्धवह=वायु। सुरभि=सुगन्धित। सिहर=कांपना। उडुसुमन=नक्षत्र रूपी फूल। विहग=पक्षी।

भावार्थ—चिरकालीन गन्ध से परिपूर्ण हमारी सांस से वायु सुगन्धित है और उस,से सुगन्धित बनी हुई सारी सृष्टि हमारे किरण रूपी अंगुलियो के स्पर्श को पा कर सिहर उठती है। मै जागरण की प्रेमी और एक भूली हुई तारिका (तारा) हूँ। मैं एक पुजारिन हूँ और संसार मे दीया जलाने के लिये नित्य हूँ, नक्षत्र रूपी सुन्दर फूल तोडने और पक्षियों के स्वर मे गाना गाने के लिये आती हूँ।

(जिस प्रकार पुजारिन दीपक जलाती, फूल तोडती और गान गाती इसी प्रकार उषा भी करती है, क्यों कि उषा काल मे तारे लुप्त होते हैं और पक्षी भी गाते हैं)।

देव-पूजन में गये दिन……

शब्दार्थ—कुमारिका = कन्या। कुसुमसर = कामदेव। दुहिता = लड़की। संचालिका = चलाने वाली।

भावार्थ—मेरे दिन देव पूजन मे ही चले गये, मैं उस अनन्त (अन्त रहित परमात्मा) की कन्या हूँ, यह रात प्रियतम के चरणों पर दिये को रख कर काली हो गई है अब मैं किस की पूजा करूँ ? वह सुन्दर और अविनाशी देवता कहां है ? मैं कामदेव की भोली लड़की हूँ। मैं सृष्टि को चलाने वाली हूँ।

मै चली हूँ प्रेम-पथ पर……

शब्दार्थ—रिक्त उर = शून्यहृदय। एकाकिनी = अकेली। काया = शरीर। नियति = विधाता। वञ्चित = ठगाये गये। चिरन्तन = अनादि।

भावार्थ—मै प्रेम-मार्ग पर चल पड़ी हूँ। और आज न जाने कौन काँटे बन गये हैं। कौन जाने, मैं कब रुकूँगी।

मेरी गीत की काया है। मैं आँसुओं की माला हूँ। मेरे प्राण दैव ने ठगे हैं और मैं अनादि बालिका हूँ॥

राजाराम खरे

आसाप

पृष्ठ २०० शब्दार्थ—गगनचुम्बी = आकाश को चुम्बन करने वाले, बहुत ऊचे। लँगुटिया = लँगोटी। निर्वाह = गुजारा। टेक =

पुकार। पंगु=लंगडा। कुभाव=बुरा विचार।

भावार्थ—वह खजाना कहां है? आसमान से बातें करने वाले वह महल भी गिर गये। अब तो सन्तुष्ट हो जाओ और झोंपडी में आग मत लगाओ। अब हमारी यही एक लंगोटी बाकी है, यही हमारी साथिन है। हमारा वेश भी नंगा है, अब इस को तो मत छीनो। हम एक रूखी रोटी से ही गुजारा करते हैं, यदि हम (इस के विरुद्ध) चिल्लायें तो वह निन्दनीय माना जाता है, यह तो मानो जहर छिड़कना है। अब तो लंगडे के हाथ में केवल लाठी का ही सहारा रहा है। अब तुम उस (लाठी) को तोड कर उसके जीवन को भार मत बनाओ। तुम ने हृदय में जख्म कर दिया जो पक कर फोडा बन गया परन्तु तो भी तुमने अपना बुरा विचार (दुर्व्यवहार) नहीं छोडा, हे निर्दय अब तो इस फोडे को मत दुखाओ।

झड जावेंगे पात—

शब्दार्थ—लहलहा=हरे भरे। परिवर्तनमय=बदलने वाला। अन्तरिक्ष=आकाश। विलोक=देखना।

भावार्थ—जो पतिया अभी हरी भरी हैं वह गिर जायेगी। यह समय प्रातःकाल और सायंकाल के समान बदलने वाला है। हम पर अत्याचार (जुल्म) तो होता है पर इस से हमारा क्या बिगड़ा, बल्कि हमें अत्यन्त आनन्द है क्योंकि हम जिस के थे उसी में मिल गये। तुम्हारा काम तो धूल झोंकना (दूसरों को धोखा देना) और मारना है, हमारा प्रेम ही धन्य है जोकि हम अपने को बलिदान करते हैं। जो फूल डाल से गिर कर जमीन पर पड़ता है उस पर धूल पड़ती है और उस को कोई भी नहीं सूँघता है। जब यह देश सूर्योदय की लालिमा वाला बन जायेगा तब तो

इसे देख कर आकाश को ईर्ष्या होगी। (जब इस देश की उन्नति होगी तब और मुल्क इसे देख कर ललचायेंगे)

(कवि ने इन पद्यों में देश की दुर्दशा का सूक्ष्म चित्र उतारा है और शासकों की नीति का भी दिग्दर्शन कराया है)।

——:०:——

मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी झांसी के रहने वाले हैं। हिन्दी जगत् में आप का स्थान बहुत ऊँचा है। आप सर्वप्रिय कवि हैं। नागरिक और ग्रामीण सभी आप की शिक्षादायक एवं प्रभावोत्पादक कविता को चाव से पढ़ते हैं। भारत-भारती, जयद्रथवध, साकेत, यशोधरा आदि आप की लिखी हुई तथा अनुवादित पुस्तकों की संख्या २५ के लगभग है।

आप की कविता देशभक्ति के भावों से पूर्ण होती है। इसी के प्रसाद रूप आज कल आप "भारत-रक्षा विधान" के शिकार हो कर "कृष्ण मन्दिर" (जेल) की तीर्थ यात्रा कर रहे हैं।

———

मातृ-भूमि

पृष्ठ २०३—शब्दार्थ—नीलाम्बर = नीला वस्त्र या आकाश। परिधान = पहनने के कपड़े धोती आदि। हरित पट = हरे रंग के वस्त्र। युग = जोड़ा, दो। रतनाकर = रत्नाकर, समुद्र। मण्डन = भूषण। वन्दी = चारण, भाट। विहंग = पक्षी। शेष फन = शेषनाग के फण। अभिषेक = विधिपूर्वक मन्त्रों से पवित्र जल छिड़क कर

तिलक करना। पयोद = बादल। सगुण = साकार। सर्वेश सब के ईश, प्रभु।

भावार्थ—हे मातृभूमि! तेरे हरित पट (लहलहाते भूभागो) पर नीले रंग का सुन्दर आकाश रूपी वस्त्र परिधान के समान शोभित है। सूर्य और चन्द्र दोनो ही तेरे मुकुट हैं। रत्नो का भण्डार समुद्र तेरी मेखला (करधनी, तागड़ी) है, जो रत्नों से जडी हुई है। नदिया प्रेम की धार हैं। फूल और तारे तेरे भूषण हैं। अनेक प्रकार के पशु पक्षी स्तुति करने वाले चारण-भाट हैं। शेषनाग के फण तेरे विराजने के लिये सिंहासन हैं। बादल विधिपूर्वक (अपने गर्जन रूपी) मन्त्रो से पवित्र किए हुए जल को छिड़क कर तेरा अभिषेक करते हैं। हे मातृभूमि! तेरे इस वेष पर सभी निछावर हैं और तू वास्तव मे ही सब के स्वामी प्रभु की साकार मूर्ति है॥

मृतक-समान अशक्त '' ।

शब्दार्थ—मृतक-समान = मरे हुए के समान। अशक्त = शक्ति रहित, असमर्थ। विवश = लाचार। विलोक = देख कर। अवलम्ब = सहारा। अतुल = जिस की तुलना न हो सके, अनुपम। अंक = गोद। त्राण = रक्षा।

भावार्थ—शक्तिरहित मृतको की तरह बेबस होकर आंखो को मीचे हुए हम को माता के गर्भ से नीचे गिरता हुआ देख कर जिस ने कृपा करके सहारा दिया था और अपनी अनुपम गोद मे ले कर हमारी रक्षा की थी, जो सदा ही हमारी माता का भी पालन करती रही ऐसी हे मातामही! मातृभूमि! तू हमारी पूज्य (पूजा के योग्य) क्यों न हो?

पृष्ठ २०४ जिस की रज में…

शब्दार्थ—रज = धूल। परमहंस = अवधूत, योगी। हर्षयुत = प्रसन्नतापूर्वक। निरख = देखकर। मग्न = लीन। मोद = प्रसन्नता, हर्ष।

भावार्थ—जिस की धूल में लोट लोट कर हम बड़े हुए हैं और घुटनों के सहारे धीरे २ चल कर खड़े हुए हैं, अवधूत योगियों के समान बचपन में जिस पर रहते हुए हम ने सब सुख पाये और "धूल भरे हीरे" कहलाये, जिस की प्यारी गोद में हम प्रसन्नता से खेले-कूदे, हे मातृभूमि! तुझ को देख कर हम प्रसन्नता में लीन क्यों न हों?

जिन मित्रों का मिलन …..

शब्दार्थ—मलिनता = मैलापन, पाप। मुददायक = प्रसन्नता देने वाला। स्वजन = अपने आदमी, बन्धु-बान्धव। हर्षित = प्रसन्न। नाता = सम्बन्ध। व्याप्त = फैला हुआ। तत्व = सार, असली भाग। महत्त्व = गौरव।

भावार्थ—जिन मित्रों का मेल-मिलाप पापों (उदासीनता दुःख आदि) को दूर करता है, जिस प्रेमी का प्रेम हमें प्रसन्नता देता है, अपने जिन बन्धु-बान्धवों को देख कर हमारा हृदय प्रसन्न हो जाता है और जिन से कभी जन्म भर भी हमारा सम्बन्ध नहीं टूटता, उन सभी में सदा तेरा ही सार फैला हुआ है। हे मातृ-भूमि! तेरे समान और किस का गौरव है?

पृष्ठ २०५—निर्मल तेरा नीर …

शब्दार्थ—निर्मल = स्वच्छ। पवन = वायु। श्रम—थकावट। षट् = छः। दृश्ययुत = दृश्यों (नजारों) वाला। क्रम =

सिलसिला, बारी बारी से आना। शुचि = पवित्र। सुधा = अमृत। तरणि = सूर्य।

भावार्थ—तेरा स्वच्छ जल अमृत के समान उत्तम है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु हमारी सारी थकावट को दूर कर देता है। छहों ऋतुओं का अनेक प्रकार के दृश्यों से युक्त होकर बारी-बारी से आना बड़ा ही अद्भुत है। हरियाली का फर्श मखमल से कुछ कम थोड़े ही है? हे मातृभूमि! रात मे चन्द्रमा का प्रकाश तुझ पर पवित्र अमृत का सिंचन करता है और दिन में सूर्य अन्धकार का नाश करता है।

सुरभित सुन्दर सुखद……

शब्दार्थ—सुमन = फूल। सुधो (धा + उ = धो) पम = अमृत के समान। वसुधा = वसु (धन) को धारण करने वाली। धरा = धारण करने वाली। यथार्थ = नाम के अनुकूल।

भावार्थ—अलौकिक, सुन्दर, सुख देने वाले फूल तुझ पर खिलते हैं। अनेक प्रकार के रसीले अमृत के समान मधुर फल तुझ पर हैं। एक से एक अद्भुत औषधि यहां मिलती है। कहीं पर सुन्दर सुन्दर धातुओं और रत्नों वाली खानें शोभायमान हैं। हमारे लिए जिन जिन पदार्थों की आवश्यकता होती है वे सभी हमें मिल जाते हैं। हे मातृभूमि! इसलिए "वसुधा" और "धरा" तेरे ये नाम बिलकुल ही ठीक हैं।

दीख रही है कहीं…..

शब्दार्थ—शैल-श्रेणी = पर्वतमाला। घनावलि = मेघ समूह। वेणी = स्त्रियों की गुथी हुई चोटी। पखारना = धोना। चेरी = दासी। तरुराजि = वृक्ष समूह। चारु = सुन्दर। सात्विक = सतो-

गुण वाले, श्रेष्ठ ।

भावार्थ—कहीं दूर तक पर्वतमालाएं दीख रही हैं। कहीं पर मेघ समूह तेरी गुंथी हुई वेणी (केशपाश) के समान हैं। नदियां दासी बन कर तेरे चरणों को धो रही हैं। अपने फूलों से वृक्ष समूह तेरी पूजा कर रहे हैं। मलयाचल से आती हुई धीमी और सुगन्धित हवाएँ तुझ पर सुन्दर चन्दन चढ़ा रही हैं। इस प्रकार तुझे देख कर हे मातृ-भूमि! किस के मन में श्रेष्ठ भाव नहीं उत्पन्न होते ?

पृष्ठ २०६—क्षमामयी तू दयामयी······

शब्दार्थ—क्षमामयी = सहन शक्ति वाली। दयामयी = दयालु। क्षेममयी = अमृतयुक्त। वात्सल्यमयी = स्नेह करने वाली। विभव-शालिनी = ऐश्वर्य वाली। विश्वपालिनी = संसार का पालन करने वाली। दुःखहर्त्री = दुःख दूर करने वाली। भय निवारिणी = भय दूर करने वाली। सुखकर्त्री = सुख देने वाली। शरणदायिनी = शरण मे रखने वाली। त्राण = रक्षा।

भावार्थ—हे सब को शरण देने वाली देवि ! तू सब कुछ सहन करने वाली है। दयालु है, कल्याण करने वाली है। अमृत से पूर्ण है और स्नेह और प्रेम करने वाली है। तू ऐश्वर्ययुक्त है, संसार का पालन करने वाली और सब का दु ख दूर करने वाली है। तू भय दूर करने वाली और सुख शान्ति देने वाली है। तू सब की रक्षा करती है। हे मातृभूमि ! हम तेरी सन्तान हैं। तू हमारी माता है और तू ही हमारे प्राणो का प्राण है।

जिस पृथिवी में मिले···

शब्दार्थ—भव बन्धन मुक्त = संसार के बन्धनों से स्वतंत्र।

भावार्थ—हे भगवन् ! जिस पृथिवी में हमारे पूर्वज मिल गये